अंक : १४१

जनवरी-मार्च २०१८

# कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

## कहानियां

नीतू सुदीप्ति 'नित्या' • सुषमा मुनींद्र • सुशांत सुप्रिय
सिद्धेश • ताराचंद मकसाने • राजगोपाल सिंह वर्मा

## सागर-सीपी

डॉ. अशोक भाटिया

२० रुपये

# ALL LOANS UNDER ONE ROOF

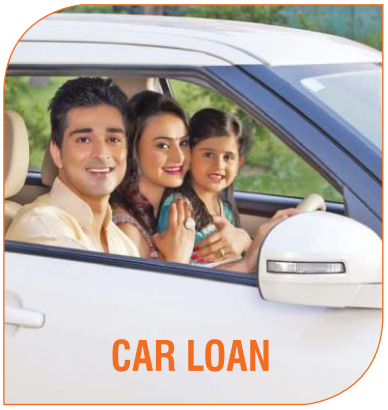


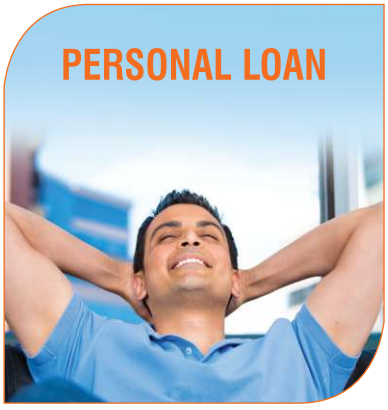

Interest on daily reducing balance • Minimum Paperwork
Speedy Loan Approval • Attractive Interest Rates • Easy and Fast Processing

Our Other Attractive Schemes:

**Gold Loan | Educational Loan**

**SMS 'LOAN' to 92231 78900**

**JANAKALYAN SAHAKARI BANK LTD.**

(Scheduled Bank)

*Come and See the Change . . .*

**Operating through 26 Branches in Mumbai, Thane, Navi Mumbai & Panvel**

**www.jksbl.com • Toll Free: 1800 225 381**

* T&C apply

जनवरी-मार्च २०१८
(१९७९ से प्रकाशित)

# कथाबिंब

**प्रधान संपादक**
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

**संपादिका**
मंजुश्री

**संपादन सहयोग**
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
**आजीवन** : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
**वार्षिक** : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो.: ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
**www.kathabimb.com**

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222
● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

***एक प्रति का मूल्य : २० रु.***
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
**(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)**

## कहानियां

।। ७ ।। नाही है कोई ठिकाना - नीतू सुदीप्ति "नित्या"
।।१५।। सरलता - सुषमा मुनींद्र
।।२१।। इंडियन क़ाफ्का - सुशांत सुप्रिय
।।२५।। अहसान फ़रामोश -सिद्धेश
।।२९।। तालाब की मछली - ताराचंद मकसाने
।।३५।। प्रारब्ध - राजगोपाल सिंह वर्मा

## लघुकथाएं

।।२४।। अहसास / अशोक वाधवाणी
।।२८।। गांव की सुरक्षा / अंकुश्री
।।५४।। औपचारिकता / डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा

## ग़ज़लें / कविताएं

।।३३।। ग़ज़ल / डॉ. रामबहादुर चौधरी "चंदन"
।।३४।। दो ग़ज़लें / केशव शरण
।।३४।। कविता / रमेश प्रसून
।।४८।। ग़ज़ल / यूसुफ़ ख़ान "साहिल"
।।५२।। ग़ज़ल / फ़ारूख हुसैन

## स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।४०।। "सागर-सीपी" / डॉ. अशोक भाटिया
।।४७।। "वातायन" / अक्षय जैन
।।४९।। "औरतनामा" / डॉ. राजम पिल्लै
।।५३।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी** ●
**facebook.com/kathabimb**
*आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि*
*वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.*

आवरण चित्र : सियाटल नीडिल (सियाटल शहर, अमेरिका),
४ अगस्त २०१७. चित्र : डॉ. अरविंद

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

# कुछ कही, कुछ अनकही

*"कथाबिंब"* का यह १४१ वां अंक है. हमारी प्राथमिकता रहती है कि तिमाही ख़तम होते-होते अंक छप जाये और जल्दी से जल्दी पत्रिका पाठकों के पास पहुंच जाये. यह भी कोशिश रहती है कि पोस्टिंग से पहले नया अंक वेबसाइट पर चला जाये. पाठक वेबसाइट देखकर सुनिश्चित कर सकते हैं कि अमुक अंक प्रकाशित हुआ है अथवा नहीं. वेबसाइट के अलावा *"कथाबिंब"* को फ़ेसबुक पर भी देखा-पढ़ा जा सकता है. वेबसाइट निशुल्क है.

इस बात को पहले भी रेखांकित किया जा चुका है कि इधर रचनाकारों का अतुलनीय सहयोग हमें मिलने लगा है. अधिकांश रचनाकार ई-मेल के माध्यम से कहानियां भेजते हैं. यह एक सुखद संकेत है कि हिंदी का लेखक समय के साथ चल रहा है. किंतु इसके चलते हर दूसरे-तीसरे दिन एक कहानी प्रकाशन हेतु मेल से हमारे पास आ जाती है. कहना न होगा कि प्रत्येक कहानी पर यथोचित निर्णय लेने में कुछ समय तो लगेगा ही. फिर भी हमारा प्रयास रहता है कि रचनाकार को शीघ्र से शीघ्र निर्णय से अवगत करा दिया जाये. लेखकों से पुन: निवेदन है कि कृपया ई-मेल से लघुकथाएं, कविताएं, ग़ज़लें आदि न भेजें. ऐसी अप्रकाशित रचनाएं कृपया साधारण पोस्ट से ही भेजें.

इस बार *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१७"* के पुरस्कारों की घोषणा पृष्ठ ६ पर प्रकाशित की गयी है. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई. प्रशस्ति-पत्र के साथ पुरस्कार की राशि चैक द्वारा शीघ्र भेजी जायेगी. इस अंक में स्थानाभाव के कारण "आमने-सामने" स्तंभ नहीं जा सका है.

*"विश्व हिंदी संस्थान"* इस वर्ष २६ से ३० अप्रैल तक एक सम्मेलन टोरंटो, कनाडा में आयोजित कर रहा है. इसमें भाग लेने के लिए *"कथाबिंब"* को भी आमंत्रण मिला है. सम्मेलन में सम्मिलित होने के कारण अप्रैल के तीसरे सप्ताह में कनाडा जाने का कार्यक्रम है. तत्पश्चात आगे लगभग दो माह तक अमेरिका भ्रमण का भी प्रोग्राम है. इस कारण, विवश हो पत्रिका के अगले दो अंकों को संयुक्त अंक के रूप में ही निकालना संभव हो पायेगा.

●

इस अंक की कहानियों की बानगी, इस बार छ: कहानियां : हम महिला सशक्तीकरण की कितनी भी बात कर लें पर कभी-कभी समाज और परिवार के दबाव में नारी का शोषण होता ही रहता है. नीतू सुदीप्ति "नित्या" की कहानी *"नाही है कोई ठिकाना"* में मज़बूर होकर घर की बड़ी लड़की को सरोगेट मां बनना पड़ता है और उसकी शादी टलती जाती है लेकिन बाद में यही पैसे कमाने का ज़रिया बन जाता है और सिलसिला रुकता नहीं. अगली कहानी *"सरलता"* (सुषमा मुनींद्र) का कथ्य बहुत सामान्य है. संपन्न घर का युवा स्वस्तिक एक स्कूली छात्र है. उसका सारा दिन स्कूल और ट्यूशन में बीतता है. माता-पिता दोनों दफ़्तर में काम करते हैं और उस पर सुबह से शाम तक पढ़ाई का दबाव बनाये रखते हैं कि कहीं इस "रैट-रेस" में पीछे न छूट जाये. अचानक स्वस्तिक की जान-पहचान घर के पास तंबू में रहने वाले, दो मज़दूर लड़कों से हो जाती है. उसके सामने धीरे-धीरे एक सीधा-सादा, सरल और निष्कपट संसार उजागर होने लगता है जिससे वह अब तक अनभिज्ञ रहा था. तीसरी कहानी के कथा-लेखक सुशांत सुप्रिय (*"इंडियन क़ाफ़्का"*) कुछ वर्षों पहले लगातार दो बार "कमलेश्वर-स्मृति कथा प्रतियोगिता" में प्रथम पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं. कहानी का नायक ख़ुद में बंद है. वह पत्रकार बनना चाहता है लेकिन प्रेमिका नेहा उसे आईएएस अधिकारी के रूप में देखना चाहती है, जो संभव नहीं है और वह उसे छोड़ देती है. घर वाले उससे अलग परेशान हैं. कुछ समझ नहीं पाता कि करे तो क्या करे! वरिष्ठ कथाकार सिद्धेश की कहानी *"अहसान फ़रामोश"* एक अलग धरातल की कहानी है. लीलावती ने सेवा निवृत्ति के बाद भी पूरी ज़िंदगी शिद्दत और लगन से एक शिक्षा संस्था में काम किया और नाम कमाया. संस्था की देख-रेख वे एक अभिभावक की तरह करती थीं. पति को गुज़रे कई साल हो गये, बच्चे नहीं थे. घर में वे अकेली थीं. संस्था की कुछ राशि उनके पास जमा रखी थी जिसको बिना दिये ही वे अचानक गुज़र गयीं. बिना अधिक समय नष्ट किये नाते-रिश्ते सारा कुछ ले गये और उनकी वफ़ादारी पर प्रश्न चिन्ह खड़ा होगया. अगली कहानी *"तालाब की मछली"* (ताराचंद मकसाने) एक अस्पताल की डीन डॉ. शिवानी की कहानी है. शहर में हुए बम विस्फोटों के कारण अनेक घायल लगातार अस्पताल में भेजे जा रहे थे. डॉ. शिवानी अपनी पूरी टीम के साथ युद्धस्तर पर घायलों के इलाज़ में जुटी हुई थीं. वे नहीं चाहती थीं कि ऐसे में मीडिया वाले या कोई अन्य अस्पताल में आये. यहां तक कि उन्होंने मुख्यमंत्री की विज़िट के लिए पीए को मना कर दिया. बजाय बुरा मानने के मुख्यमंत्री ने एक कार्यक्रम में डॉ. शिवानी को पुरस्कृत किया. छठी और अंतिम कहानी *("प्रारब्ध")* राजगोपाल सिंह वर्मा की "कथाबिंब" में पहली कहानी है. ठाकुर साहब पुलिस के डिप्टी एसपी के पद से सेवानिवृत हुए थे. उन्होंने नौकरी के दौरान अच्छा ख़ासा ऊपर का पैसा कमाया था. पर वह कुछ काम नहीं आया. तीन लड़के थे, पहले दो लड़कों का विवाह हो चुका था. बरसात में सुबह टहलते हुए एक दिन वे गिर गये तो फिर उठ नहीं पाये. मझले लड़के ने विजातीय लड़की से शादी की थी किंतु मरते समय तक उसी बहू ने उनकी सेवा-टहल की. सारा कुछ भाग्य का खेल है.

आप चाहें अख़बार उठाकर देखें या टी. वी. के समाचार देखें हर तरफ़ केवल हंगामा ही हंगामा दिखाई और सुनाई देता है. ज़रा-ज़रा सी बात पर लोग सड़कों पर उतर आते हैं. हर तबके और वर्ग को आरक्षण चाहिए. तोड़-फोड़, मारपीट, लूटपाट, आगजनी यह बहुत ही सामान्य बात हो गयी है. यह माना कि आम लोगों में आक्रोश है किंतु बहुधा इस सबके पीछे राजनीतिक कारण ही होते हैं. बारहों महीनों देश में कहीं न कहीं स्थानीय निकायों, नगर निगम, विधान परिषद के चुनाव होते रहते हैं. हर पार्टी वोटों का अपने पक्ष में ध्रुवीकरण करना चाहती है, लोगों को उकसाया जाता है. जुलूस, धरना, चक्का जाम, हिंसा. हाल ही में इन सबमें एक नयी चीज़ जुड़ गयी है : मूर्तियों को तोड़ना. पुलिस और प्रशासन इसी में व्यस्त रहता है. रैलियों, मीटिंगों से समय मिले तब तो विकास कार्यों के लिए नेताओं को समय मिले! चार साल पहले देश की जनसंख्या १२५ करोड़ रही होगी किंतु वर्तमान में यह १३७ करोड़ हो गयी है. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की सरकार ने ऐसी अनेक योजनाएं शुरू की हैं जिनसे देश के मौज़ूदा हालात बदलेंगे. स्वच्छ भारत अभियान एक ऐसी ही योजना है. खुले में शौच की समस्या पर भी लगाम लगी है. परंतु जितनी तेज़ी से "अच्छे दिन" आने चाहिए ऐसा नहीं हो पा रहा है लेकिन देश अवश्य करवट ले रहा है. पिछले साल दो बार उत्तराखंड और उत्तर प्रदेश के कुछ इलाक़ों की यात्रा करने का अवसर मिला. अनेक जगह सड़कों का निर्माण हो रहा है. गांव हो या शहर युवाओं के पास या तो मोटरसाइकिल है या एक्टिवा स्कूटर. ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं दिखा जिसके पास मोबाइल न हो.

यदि देखा जाये तो पिछले चार सालों में, देश में सबसे बड़ा परिवर्तन उत्तर-पूर्व में आया है. भारत का जो भू-भाग अब तक अलग-थलग पड़ गया था वह आज मुख्य धारा से जुड़ गया है. इस दिशा में एक बहुत ही सुनियोजित और योजनाबद्ध तरीक़े से काम किया गया. अनेक ग़ैरसरकारी संस्थाओं के कार्यकर्ताओं ने अपना घर-परिवार छोड़कर महीनों वनवासियों के बीच काम किया. नागा और बोडो लैंड के आंदोलनकारियों से मिलकर उन्हें विकास कार्यों से जोड़ा गया. हाल में उत्तर-पूर्व के तीन राज्यों में हुए चुनावों में इस पहल का सकारात्मक परिणाम हमारे सामने आया. त्रिपुरा में भाजपा की पूर्ण बहुमत वाली सरकार बनी, जहां कॉन्ग्रेस की एक भी सीट नहीं आयी. नागालैंड और मेघालय में भी भाजपा के समर्थन से सरकार बनी. चुनाव के परिणामों की घोषणा से पूर्व युवराज को *"नानी याद आ गयी"* और वे उनसे मिलने इटली चले गये, इसे संयोग ही कहा जायेगा. अब कॉन्ग्रेस मात्र तीन राज्यों में ही सिमट कर रह गयी है, बड़े ज़ोर शोर से विपक्ष की एकता के प्रयास चल रहे हैं. इस खिचड़ी का कौन सरगना होगा अभी कुछ कहा नहीं जा सकता. सत्ता प्राप्ति के लिए कुछ भी संभव है. इसकी एक झांकी उत्तर प्रदेश की दो लोकसभा की सीटों के उप-चुनावों के दौरान सामने आयी. बुआ-भतीजे ने एक-दूसरे को अतीत में जो कुछ बुरा-भला कहा था वह भुला दिया. सपा और बसपा के गणितीय समीकरण ने भाजपा को इतने ज़ोर से पटखनी दे दी कि उसके तोते उड़ गये. भाजपा को लग रहा था कि फूलपुर और गोरखपुर के उनके किले अभेद्य हैं, उनकी जीत पक्की है. लेकिन समर्थक वोट डालने नहीं गये. दोनों हारों से भाजपा को सबक लेना पड़ेगा. मई में कर्नाटक में चुनाव हैं, इसके बाद इस साल ही भाजपा शासित कई राज्यों में भी "परीक्षा" होनी है और फिर २०१९ में लोकसभा चुनाव! देश को निरंतर रैलियों और आंदोलनों को झेलने के तैयार रहना पड़ेगा.

इस बार भी, पिछले कई सत्रों की तरह संसद के इस सत्र में भी काम-काज ठप्प है. विपक्ष रोज़ ही नया मुद्दा लेकर उपस्थित होता है – "नीरव मोदी को सरकार ने भगा दिया," "आंध्रा को विशेष राज्य का दर्ज़ा दिये जाने की मांग" और "अब डेटा लीक." आज ट्वीटर, फ़ेसबुक और यू-ट्यूब का उपयोग करने वालों की संख्या करोड़ों में है. आपके कितने चाहने वाले ("फॉलोअर") हैं यह तय करता है कि आपकी साख कितनी है. टीवी की सभी चैनलें ख़बर बनाने में इन्हीं माध्यमों का उपयोग करती हैं. हर ख़बर की एक समय सीमा होती है, एक एक्सपाइरी डेट. जैसे ही कोई नयी ख़बर आयी कि पहले वाली "किल" कर दी जाती है. "वायरल सच" भी दर्शकों को उलझाये रखने का अच्छा तरीक़ा है.

आजकल दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल सबसे माफ़ी मांगने के अभियान पर हैं. उन्होंने जिस किसी पर मानहानि के मुकदमे किये थे उन्हें वे वापस ले रहे हैं. सहयोगी सिसोदिया जी के अनुसार इसमें धन के अपव्यय के साथ अनेक बार कोर्ट-कचहरी के चक्कर लगाने पड़ते हैं. देर से ही सही चलो सद्बुद्धि आयी तो सही. पर क्या जनता उन्हें माफ़ कर पायेगी ? ऐसे ही एक और "नेता" हैं नवजोत सिंह सिद्धू जो थोड़े दिन पहले तक भाजपा में थे और कॉमेडी कार्यक्रमों में जोक सुनाकर लोगों को हंसाते थे. अब वे दल बदल करके कॉन्ग्रेस में चले गये है. इनका एक विडियो वायरल हो रहा है. एक हिस्से में इनके द्वारा २०१३ में दिये भाषणों के अंश हैं जिनमें भाजपा और मोदी जी की तारीफ़ में क़सीदे पढ़ते दिखाई दे रहे हैं और दूसरे हिस्से में २०१८ में कॉन्ग्रेस और राहुल गांधी और सोनिया जी की विरुदावली गा रहे हैं. इससे बड़ा मज़ाक क्या हो सकता है. प्राचीन काल से भारतवर्ष में चारणों की यही भूमिका रही है.

अरविंद

# लेटर-बॉक्स

▸▸ अरविंद जी आपको बहुत-बहुत बधाई. 'महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी' ने आपको हिंदी भाषा की सेवा करने के लिए राज्य स्तरीय सम्मान 'जीवन गौरव' से सम्मानित किया है. मैं आपको इस उपलब्धि पर हार्दिक बधाई दे रहा हूं. आपको ५१,००० रु. की राशि के साथ 'छत्रपति शिवाजी राष्ट्रीय एकता' पुरस्कार से सम्मानित किया गया. एक बार पुन: आपको बधाई '*आपनै लखदाद है.*'

पत्रिका के १४० वें अंक में सभी कहानियां बेजोड़ हैं. आपका चयन सराहनीय है. डॉ. लता अग्रवाल, मानवी वहाणे, शकुंतला पालीवाल, नीता श्रीवास्तव व अर्चना मिश्रा जी को बधाई. 'आमने-सामने' व 'सागर सीपी' प्रशंसनीय हैं. कविताएं, ग़ज़लें भी अच्छी हैं. टेम्स नदी का पुल मुखपृष्ठ पर शोभायमान लगता है. पत्रिका में विज्ञापनों की कमी खलती है, आप पत्रिका कैसे निकाल पाते हैं?

***– हरमन चौहान***

*१७/३६९०, अंबे कॉलोनी, से-१४, गोवर्धन विलास, उदयपुर (राज.)*

---

▸▸ 'कथाबिंब' का अक्तू-दिसं. २०१७ अंक प्राप्त हुआ. आभार. इस बार भी कहानियों/लघुकथाओं में मातृशक्ति का वर्चस्व है. कहानियों में डॉ. लता अग्रवाल (सिग्नल के पार ज़िंदगी), अर्चना मिश्रा (कटघरे में खड़ा रिश्ता) एवं विशेषकर नीता श्रीवास्तव (पटवारन मां) की क़लम ने प्रभावित किया. लघुकथाओं में डॉ. नीता छिब्बर (मन्नत) व सेवा सदन प्रसाद (विरासत) ने ध्यान आकर्षित किया. पंचोली, राकेश भ्रमर, बावनिया व चंद्रसेन 'विराट' की ग़ज़लों के कुछ शेर अच्छे लगे. 'औरतनामा' में डॉ. राजम पिल्लै ने क्रांतिमूर्ति अरुणा जी के व्यक्तित्व/कृतित्व पर बहुत अच्छी जानकारी दी है. फ़ौजान अल्वी का लेख सोचने को विवश करता है. संपादकीय बेलाग-लपेट के तीखा अवश्य है लेकिन सत्य है. 'जीवन' गौरव सम्मान के लिए बधाई स्वीकारें.

**– आनंद बिल्थरे**

*प्रेमनगर, बालाघाट (म. प्र.) -४८१००१.*
*मो. : ८३५८९२१००५*

▸▸ 'कथाबिंब' का १४०वां अंक प्राप्त हुआ. पाठकों को हिंदी साहित्य पढ़ने को प्रेरित करती पत्रिका होने के साथ ही 'कथाबिंब' पाठकों से अभिमत मंगवा कर उनकी भरपूर परीक्षा भी लेती है. उच्च कोटि के संपादन की चयन पद्धति द्वारा सभी कहानियां बेजोड़ और सर्वश्रेष्ठ होती हैं. पाठक को इतनी महत्वपूर्ण पठनीय सामग्री देने के लिए संपादक मंडल को धन्यवाद. पाठकों का प्रोत्साहन प्रेरणा, प्रतिक्रिया, प्रतिसाद ही सतत लिखने को प्रेरित करता है. 'कथाबिंब' पत्रिका के संपादकीय परिवार सहित समस्त पाठकों को नववर्ष की शुभकामनाएं. 'महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी' द्वारा दिये गये राज्य स्तरीय 'जीवन गौरव सम्मान' पुरस्कार के लिए अरविंद जी को बहुत-बहुत बधाइयां. वर्षों से हिंदी भाषा की आप सेवा कर रहे हैं. आप इस पुरस्कार के हक़दार हैं ही.

**– नीता श्रीवास्तव**

*२९४, देवपुरी कॉलोनी, महू (म. प्र.) -४५३४४१*
*मो. : ९८९३४०९९१४*

▸▸ 'कथाबिंब' का अक्तू-दिसं.२०१७ का अंक हाथ में है. सबसे पहले जिस समाचार ने ध्यान आकर्षित किया वह है 'महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी' द्वारा हिंदी भाषा की सेवा करने के लिए आपको प्रतिष्ठित राज्य स्तरीय 'जीवन गौरव सम्मान' का प्रदान किया जाना. इस संदर्भ में आप मेरी हार्दिक बधाई स्वीकारें. 'स्थायित्व के लिए तप ज़रूरी है,' सीमा जैन द्वारा लिया गया साक्षात्कार काफ़ी रोचक लगा और बलराम अग्रवाल जी के बारे में जानकारी भी मिली. अर्चना मिश्रा की 'कटघरे में खड़ा रिश्ता' और नीता श्रीवास्तव की 'पटवारन मां' कहानियों ने प्रभावित किया. पत्रिका का कलेवर सुंदर है. कविताओं

और लघुकथाओं का चयन भी सुंदर है. कुल मिलाकर अंक अच्छा बन पड़ा है. मेरी हार्दिक बधाई.

**- *जयराम सिंह गौर***

*१८०/१२, बाबू पुरवा कॉलोनी,*
*किदवई नगर, कानपुर-२०८०२३.*

▶▶ 'कथाबिंब' अक्तू-दिसं.' १७ अंक मिला. आभारी हूं. सर्वप्रथम आपको 'जीवन गौरव सम्मान' हेतु बधाई और शुभकामनाएं. काफ़ी अर्से बाद 'कथाबिंब' पढ़ने का अवसर मिला. आपने 'कथाबिंब' के स्तर के साथ कोई समझौता नहीं किया, पत्रिका पूर्व की भांति स्तरीय एवं श्रेष्ठ रचनाओं को लेकर निरंतर निकल रही है. बधाई. प्रस्तुत अंक की कहानियों के सभी कहानीकार महिलाएं हैं. स्वाभाविक है कि कहानियों की विषय वस्तु परिवार तथा महिलाओं के जीवन के परिवेश पर ही केंद्रित होगी. महिला सशक्तीकरण की बात करती 'पटवारन मां' कहानी अंक की सबसे श्रेष्ठ कहानी है. शिल्प और कथ्य दोनों ही नज़रियों से. 'बड़ी होती लड़की' का कथ्य महत्वपूर्ण है पर शिल्प की जादूगरी में कहानी बेझिल हो गयी है. 'कटघरे में खड़ा रिश्ता' कहानी परितोष चक्रवर्ती की कहानी 'सोनपरी' की याद दिला देती है. उम्र के ढलान पर पुरुष स्त्री एक दूसरे के लिए आलंबन का काम कर सकते हैं इससे मैं सहमत हूं.

**– राजेंद्र सिंह गहलौत**

*सिंह प्रिंटिग प्रेस, बस स्टैंड के सामने,*
*बुढ़ार, जिला-शहडोल (म. प्र.).*

▶▶ 'कथाबिंब' का अक्तू-दिसं. २०१७ अंक प्राप्त हुआ. बेहतरी की चाह में कुछ लोग अपना घर छोड़ देते हैं. 'अमावस का चांद' शकुंतला पालीवाल की कहानी ऐसा ही संदेश देती है. कहानी के बहाने रचनाकार ने पलायन की समस्या पर प्रकाश डाला है. बहुत से लोगों की आदत स्त्रियों को तकने की होती है, ऐसे लोग अपनी आदत सुधार लें. 'पटवारन मां' नीता श्रीवास्तव की कहानी यही सीख देती हैं. ज़िंदगी है तो हमसफ़र भी चाहिए. इसी को इंगित करती अर्चना मिश्रा की 'कटघरे में खड़ा रिश्ता' कहानी है. 'सागर सीपी' स्तंभ में सीमा जैन की बलराम अग्रवाल से बातचीत अच्छी लगी. जहां और व्यवसायों में लाभ हानि का सवाल होता है वहीं लखक के लिए रचनाकर्म घर फूंक तमाशा देखने जैसा होता है. रचनाकार का यह कहना कि आर्थिक लाभों से दूर रहने वाले मानसिक व्यसनों को कौन अपनाना चाहेगा. ये भी पता चला कि लेखक अपनी बनाई दुनिया में मस्त रहता है.

**– *दिलीप कुमार गुप्ता***

*११, छोटी वमनपुरी,*
*बरेली-२४३००१*

▶▶ 'कथाबिंब' का अक्तू-दिसं. २०१७ अंक प्राप्त हुआ. आभार. आपने ग़ज़ल छापी. दो फ़ोन आये. लिखना, छपना सार्थक हुआ. 'वातायन' में इस बार आपके द्वारा अनुदित एक रचना पढ़ी. इतनी व्यस्तताओं के बावजूद अनुवाद के लिए भी समय निकाल लेते हैं! अंक के स्थायी स्तंभ सभी चाक चौबंद हैं.

**– *चंद्रसेन 'विराट'***

*१२१, बैकुंठधाम कॉलोनी,*
*आनंद बाजार के पीछे, इंदौर (म. प्र.)-४५२०१८.*

▶▶ आप जैसे हिंदी सेवी साधक को 'जीवन गौरव' पुरस्कार दिये जाने के समाचार ने प्रसन्नता से भर दिया. इस संक्रमण काल में पुरस्कारों के लिए बीछना, वह भी सुयोग्य को कम बड़ी बात नहीं.

हिंदी का भाषायी सौंदर्य दिन-दिन दीप्तिमान हो यही अभिलाषा है. 'कथाबिंब' इस दिशा में अच्छा काम कर रही है. आपको बधाई. मां सरस्वती वर दें. एक बात और..भारतीय साहित्य को आप देश-दुनिया में ले जा रहे हैं, यह भी बड़ी बात है. इसके लिए शुभकामनाएं.

**– *शिवनाथ शुक्ल***

*लिंक रोड, कैंप-२, भिलाई*

# "कमलेश्वर स्मृति कथा पुरस्कार-२०१७"

*"**कथाबिंब**" के प्रकाशन का यह ३१ वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २०१७ के "कथाबिंब" के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई ! विजेता यदि चाहें तो इस राशि में से या तो वे स्वयं **"कथाबिंब"** की आजीवन या त्रैवार्षिक सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं अथवा अपने किसी मित्र/ परिचित को सदस्यता भेंट कर सकते हैं. कृपया इस संदर्भ में शीघ्र सूचित करें. हम अत्यंत आभारी होंगे.*

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१५०० रु.) :

● **बड़ी ढोती लड़की** - मानवी वहाणे

: श्रेष्ठ कहानी (१००० रु.) :

● **प्रेम दीवानी** - पुष्पा सक्सेना ● **पानी की प्यास** - डॉ. अमिताभ शंकर राय चौधरी

: उत्तम कहानी (७५० रु.) :

● **भीतर का आदमी** - गोवर्धन यादव ● **रेगिस्तान में बारिश** - राकेश भ्रमर

● **सहयात्री** - वंदना शुक्ला ● **सिग्नल के पार जिंदगी** - डॉ. लता अग्रवाल

● **महाठगनी माया** - डॉ. लखन लाल पाल

## फॉर्म-४

***समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत "कथाबिंब" त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण :***

| | | |
|---|---|---|
| १. प्रकाशन का स्थान | : | यूनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंड. एस्टेट, भायखला, मुंबई - ४०० ०२७. |
| २. प्रकाशन की आवर्तिता | : | त्रैमासिक |
| ३. मुद्रक का नाम | : | मंजुश्री |
| ४. राष्ट्रीयता | : | भारतीय |
| ५. संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता | : | उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई - ४०० ०८८. |
| ६. कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता | : | स्वत्वाधिकारी - मंजुश्री |

*मैं, **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.*

*(हस्ताक्षर - **मंजुश्री**)*

# 'नाही है कोई ठिकाना'

नीतू सुदीप्ति 'नित्या'

छोटकू बाबू साहेब कब से चटोरी के बाबा केसर से पता नहीं का खुसर-फुसर कर रहे थे कि चटोरी की माई लाजवंती एकदम बेचैन हुए आंगन से ओसारी और ओसारी से आंगन कर रही थी. लगा कि उसके पेट में मरोड़ होने लगी. चापाकल से टूटहिया प्लास्टिक की बाल्टी में पानी भर कर चली गयी. घर के पिछूती!

वहां से आने के बाद भी वह हल्की नहीं हुई. माटी से हाथ मांज और हाथ-पैर धो फिर ओसारी में आयी.

देखा, अब छोटकू बाबू साहेब खटिया से उठे हैं और हाथ जोड़कर बोले हैं, ''भैया, हमारे घर में चिराग जलाना अब आपके ही हाथ में है. सही फैसला करिएगा. हमारे बाप-भाई के किये अहसान का बदला समझ के चुका देना.''

तभी उनकी नज़र लाजवंती पर पड़ी. बोले, ''प्रणाम भौजी, मैं फिर कल आऊंगा.'' कहकर वह चले गये.

केसर खटिया लाकर आंगन में बिछा उस पर पसर गया. लाजवंती अल्मुनिया के लोटे में पानी लेकर सिरहाने खड़ी हो गयी. ''चटोरी के बाबा, पानी पी लो.''

वह लोटे में मुंह घुसा कर गटा-गट पूरा पानी पी गया. लग रहा था कि कितने सालों से प्यासा है. लोटा नीचे रख फिर वह पसर गया.

अमरूद के पेड़ की छाया में वह आंखें बंद कर बस चुपचाप लेटा रहा. ठंडी हवा ज़ोर से बहने लगी. पेड़ के कुछ सूखे पत्ते उसके ऊपर गिर गये. वह बिना बोले अपने माथे से पत्ते हटा नीचे फेंक दिया और लेटे-लेटे ही पैर के पत्ते नीचे गिरा दिया.

यह बोझिल वक़्त लाजवंती के लिए बहुत मुश्किल भरा था. वह जल्द से जल्द सारी बातें जानना चाहती थी, क्योंकि एक घंटे से छोटकू साहेब यहां बैठे थे और उसके हाथ की पहली बार चाह पीये थे. वह भी बिना दूध वाली काली चाह नींबू डालकर!

वह उसी समय समझ गयी थी कि ज़रूर कोई ख़ास बात है, नहीं तो वह कभी उसके दुआर पर नहीं आये हैं. उनकी हवेली जाकर ही उनको परनाम पाती करना पड़ता था. माटी के अपने टूटहा घर में उनको बुलाने का सवाल ही नहीं था और बुलाती भी कैसे? कहां वह गांव के सबसे बड़े ज़मींदार राजपूत और कहां वह तेली! उम्र में छोटे होने के कारण वह केसर को भैया और लाजवंती को भौजी कह तो देते थे मगर यही भैया-भौजी उनके यहां मजूरी करते थे.

खेत जोतना, बोना, और बोझा उठाना आदि केसर करता था तो लाजवंती उनकी हवेली में झाड़ू-बुहारी और बरतन मांजने का काम करती थी.

केसर ने देखा कि बारह साल की तीसरी बेटी कम्मो चूल्हा में लकड़ी डाल सुलगा रही है, जिससे घर में धुंआ भर गया था और पांच साल की बुचिया ढिबरी की मद्धिम पीली रोशनी में क,ख,ग, याद कर रही है.

ज़्यादा अंधेरा होते देख केसर उठ कर जाने लगा. तभी सिर पर बांस की टोकरी लिये बड़ी बेटी चटोरी और दूसरी सुगिया हंसते हुए आ रही थीं. दोनों ने टोकरियां नीचे रख दीं. चटोरी की टोकरी में एक छोटा तराजू और पत्थर के पाव, आधा और एक किलो के बटखरे थे, तथा चार-पांच थोड़े ख़राब-ख़राब नेनुआ और सुगिया की टोकरी में टूटे-टूटे आठ-दस गोबर के उपले थे.

''लो बाबा, आज हम पूरे दो सौ रुपिया के तरकारी बेचे हैं. आप तो कभी इतना नहीं बेचते.'' चटोरी ने रुपये थमाते हुए कहा, ''आज मंडी में किसी के पास नेनुआ नहीं

था इसलिए हमने किलो पर पांच रुपिया ज़ादा भाव बढ़ा दिया और देखो सब बिक गये.''

हाथ में रुपये लिये केसर ख़ुश हो गया और पूरी गहराई से उसने चटोरी को देखा. पांच फ़ीट की लंबी गेहूंमना रंग और नाक एकदम सुग्गा की तरह खड़ी. अगर वह उसे अच्छी ख़ुराक देता तो उसका शरीर और भर जाता. दुबली नहीं दिखती.

''का देख रहे हो बाबा?''

''तू बड़ी हो गयी है.''

''हां बाबा, दीदिया को जल्दी से यहां से भगाओ. उनीस बरिस की हो गयी और मुझसे बहुत झगड़ा करती है. ससुराल में सास के साथ कमर में लुगा खोंस कर लड़ाई करेगी.'' सुगिया ने हाथ घुमा-घुमा कर कहा तो केसर हंस पड़ा.

''और तू अपनी सास को लाठी से मारना. मेरे बाद तो तेरा ही नंबर लगेगा, आख़िर तू मुझसे दो साल ही न छोटी है. चटोरी ने सुगिया की चोटी खींच दी.

''बाबा, मैं इतकी लड़ाकू जहाज हूं?'' सुगिया ने मुंह फुला लिया.

''मुंह फुलाने का काम बाद में करना. पहिले तुम ई बताओ गोंइंठा (उपले) केतना रुपिया के बेची हो?' लाजवंती ने पूछा.

''सौ रुपिया...''

''एक सौ बीस रुपिया का गोइंठा सौ रुपिया में बेच दी? सीख अपनी दीदिया से धंधा कैसे करते हैं?''

''माई, हमको ई काम अच्छा नहीं लगता है. हमरे माथा पर दसवीं कक्षा की परीक्षा है और तू गोइंठा बेचने का बोझा थमा दी. आज के बाद मुझसे ई काम मत कहना. चाचा साहेब आ गये थे. इसलिए तेरा धंधा आज मुझे करना पड़ा. अब नहीं करूंगी. लो रुपिया.'' सुगिया रुपये दे बुचिया के पास क़िताब खोल कर बैठ गयी.

खाना बनाते समय लाजवंती के पेट में छोटकू साहेब की बात केसर से पूछने के लिए मन कुलबुला रहा था. लेकिन उसे बेटियों के साथ हंसते देख उसने कुछ पूछा नहीं और नेनुआ की तरकारी तथा रोटी बना सभी को खिलाने लगी. मिट्टी के आंगन में अमरूद के गिरे पत्ते बुहार कर तीन-चार फटी चटाई बिछ गयीं. चारों बहनें उस पर लेट गयीं.

२० नवंबर १९८०, बिहिया, भोजपुर (बिहार).

***: शिक्षा :***

मैट्रिक

***: प्रकाशन :***

**'हमसफ़र' (कहानी संग्रह २०१४), राजभाषा विभाग बिहार सरकार से प्राप्त अनुदान राशि पर 'छंटते हुए चावल' (कहानी संग्रह २०१७), 'संवरी' (भोजपुरी उपन्यास धारावाहिक रूप में), राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में हिंदी और भोजपुरी में १५० रचनाएं प्रकाशित.**

***: पत्रिकाएं :***

**प्राची, कथाबिंब, शुभ तारिका, जनपथ, विपाशा, मधुमती, शीराज़ा, गृहशोभा, मुक्ता, सुमन सौरभ, सरल सलिल, कथादीप, असली आज़ादी व रूप की शोभा.**

***: सोशल मीडिया :***

**वेब पत्रिकाओं 'अनुभव' और 'मैसेजर ऑफ आर्ट' में कुछ रचनाएं प्रकाशित. फ़ेसबुक पर नियमित रचनाएं पोस्ट और बहु प्रशंसित.**

***: पुरस्कार :***

**कमलेश्वर स्मृति कथाबिंब पुरस्कार २०१५ में कहानी 'बिछावन' को श्रेष्ठ कहानी के रूप में पुरस्कृत तथा शुभ तारिका में चार रचनाएं पुरस्कृत.**

***: संप्रति :***

**स्वतंत्र लेखन.**

केसर खाट पर लेटा था. खुले आंगन से चंदा मामा और ख़ूब सारे तारों को वह एकटक देख रहा था. अमरूद के पेड़ से छन-छन कर आ रही उसकी चांदनी चारों बहनों पर पड़ रही थी. एकटक देखने से या मन के दुख निकालने के लिए उसकी आंखों की कोर से आंसू गिर रहे थे.

लाजवंती हाथ में कड़ुआ तेल लेकर उसके सिर पर रख दबाने लगी. तभी उसके हाथों में गीलेपन का एहसास हुआ. ''आप रो रहे हो का जी?''

केसर चुप रहा. आंसू पोंछ लिया.

''छोटकू साहेब का कह रहे थे? आप ओही बेरा से परेशान हैं. कह के मन हल्का करो.''

''चटोरी के माई, छोटकू साहेब बड़ी दूर के एगो बात कह के गये हैं. समझ में नहीं आता का करूं? हमरे ऊपर उन लोगों के बहुत एहसान है. आज एहसान चुकाने की बारी आयी है तो हमरे डेग (पैर) आगे बढ़िए नहीं रहा है.''

''कइसन बात उहां के कह दिये हैं, जो आप...''

''उनकी मलकिनी के गर्भ बार-बार गिर जा रहा है. गर्भ में कवनो बेमारी है. अगर उनका बच्चा कवनो औरत अपना पेट में रख लेगी तो वह माई बन जायेगी.''

''ई कइसन बात जी? उनका बच्चा कोई दोसर मेहरारू अपना कोखि में कइसे रखेगी?'' सिर दबाते हुए लाजवंती के हाथ रुक गये.

''आज डॉक्टर सब कुछ कर देता है. छोटकू साहेब अंगरेजी में इसका का तो नाम बता रहे थे, स...स... सरोगेट मदरा कि मदर. जो ई काम करेगी उसे ख़ूब पइसा देंगे.''

''गांव के कवनो मेहरारू ई काम नहीं करेगी.'' लाजवंती ने दो टूक में अपना फ़ैसला सुना दिया, ''छोटकू साहेब बंबई में रहके पगलाये हैं का?''

''ऊ के काम हमरे चटोरी...''

''का...?'' लाजवंती के हाथ से तेल की कटोरी छूट छन्न से नीचे गिर गयी. कड़ुआ तेल मिट्टी के फ़र्श पर गिरते ही सूख गया. बस जहां तहां तेल का दाग़ बना रहा.

''आप दोनों का मगज़ एकदम ख़राब हो गया का...?'' लाजवंती ने एकदम से केसर को झिझोंड़ दिया.

''तनी ठंडा दिमाग़ से सोच.'' केसर ने उसे शांत किया, ''गजेंद्र सिंह मालिक बेऔलाद ही मर गये. बबन सिंह शादी के तीन साल बाद ट्रक से कुचा के मर गये. उनकी ही पत्नी से विक्रम सिंह (छोटकू साहेब) बिआह किये अब ऊ माई भी बनने वाली है तो एतना झमेला हो गया है. जहां तुम खड़ी हो यह ज़मीन उन्हीं लोगों का है. जिसका पच्चीस सालों से उन्होंने एक रुपया किराया नहीं लिया है.

कम्मो के जन्म के बाद ई पूरा गांव हमको यहां से भगाना चाहता था कि हम निपुत्र हो गये हैं. उस समय गजेंद्र मालिक हमरे पीठ पर खड़ा हुए थे और बेटा-बेटी में फ़र्क करने वालों को केतना बात सुनाये थे. अपने खेत से तरकारी तूर के तुमको बेचने का हुक्म वही न दिये थे. का तुम कभी उनकी तरकारी का पईसा दी हो?'' केसर ने पूछा.

लाजवंती चुप चाप सुनती रही.

''गांव की लड़कियों के लिए गजेंद्र मालिक स्कूल खोलवाये. चटोरी को पांचवा कक्षा में फ़र्स्ट आने पर पांच सौ एक रुपिया का इनाम दिये थे. बेचारे पचास साल के होते-होते में गुज़र गये. नहीं तो उनकी कृपा से आज चटोरी अपना ससुराल में होती.

पहली बार छोटकू साहेब कुछ मांगे हैं और हम ना कइसे कहें?'' केसर ख़ामोश हो गया.

खटिया के नीचे माथा पर हाथ रख बैठी लाजवंती बस सुनती रही. उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे.

''मैं अपनी बेटियों को इतना सख़्ती से रखता हूं तब तो ई लोग कवनो ग़लत राह पर नहीं गयी हैं. ना त बिलोचन की बेटी कवन कांड की थी. छेदी धोबिया से ऊ ऐसी लटपटायी कि कुंआरे में उसका पेट रह गया था.

बिलोचन उस बेटी को घाटी (बांस की मज़बूत लकड़ी को इंसान की गर्दन के आगे पीछे रख उसे ज़ोर से दबाया जाता है, जब तक कि उसकी जान न निकल जाये.) देकर मुआ ही न दिया.

सरोगेट मदर का काम डॉक्टर के जरिए होगा. बस, दूसरे के बच्चे को अपने पेट में नव महिना रखना है.''

''कुछु मत बोलिए... चुप रहिए.'' केसर की बात काट लाजवंती थोड़ा ज़ोर से बोली, ''छोटकू साहेब आपका माथा घुमा दिये हैं.'

वह रात भर चंदा मामा को देखते, अपने भाग्य और ग़रीबी पर बिलखती रही कि उसकी ग़रीबी देखकर ही न छोटकू साहेब ई बात कह गये. कहां वह चटोरी की शादी के सपने संजो रही थी और आज बिना शादी के ही उसको 'माई' बनने का दिन आ गया है.

धान की तरह उस बीज को चटोरी की कोख़ में बोया जायेगा और फिर दूसरे के खेत (घर) में उसे रोपा जायेगा. हाय रे दुर्भाग्य! जटहा बाबा!

सुबह आंगन बुहारते चटोरी ने कहा, ''माई, कल

बाबा ठीके कह रहे थे. हमें एहसान चुकाना चाहिए. कुछ पइसा आ जाता तो घर की स्थिति ठीक हो जाती.''

''तू रतिया में सब बतिया सुन रही थी का...''

''जब कटोरिया छन्न से गिरी थी न त हमरी अंखवां खुल गयी थी. भेद दे हम...''

लाजवंती का ख़ून खौल गया. चटोरी के हाथ से झाड़ू छीन गाली देते दना-दन उसने उसे तीन-चार झाड़ू मार दिये, ''जा... जा रंडीखाना खोल के बैठ जा...''

''भौजी... यह क्या कर रही हो?'' तभी छोटकू साहेब आ गये और झाड़ू लेकर फेंक दिया, ''मैं आपकी बेटी से कोई ग़लत काम करवाने नहीं जा रहा हूं. शहर में बहुत सारी लड़कियां और महिलाएं यह काम करती हैं. लेकिन मैं कोई रिस्क नहीं लेना चाहता, क्योंकि वह सब शराब सिगरेट पीने के साथ दूसरे से संबंध भी रखती हैं.

जैसे शादी करने के लिए अच्छे कुल ख़ानदान की लड़की हर कोई ढूंढ़ता है वैसे ही मैं इस काम के लिए एक साफ़ सुथरी लड़की चाहता हूं. आप भले इसे यह काम मत करने दो पर गाली मत दो.

बबन भैया की मृत्यु के बाद उनकी पत्नी पागल जैसी हो गयी थी. मेरे साथ एक लड़की वकालत कर रही थी. हम दोनों शादी करना चाहते थे. लेकिन भाभी की हालत देख मुझे उस लड़की से माफ़ी मांगनी पड़ी. आपको पता ही है हमारे राजपूत ख़ानदान में विधवा की शादी नहीं होती. लेकिन मैंने सबको समझाया. मेरी शादी से सभी रिश्तेदार नाराज़ हैं.'' कहते हुए विक्रम सिंह (छोटकू साहेब) ने हाथ जोड़ लिया, ''मैं हाथ जोड़कर आपकी चटोरी को सिर्फ़ एक साल के लिए मांग रहा हूं. मैं चाहूं तो अपनी दंबगई दिखाकर आपकी बेटी को उठा ले जाऊं. यह पूरा गांव चूं तक नहीं बोलेगा. थाना, पुलिस, नेता और अख़बार सब मेरी मुट्ठी में हैं. पर मैं आप सबके आशीर्वाद से बाप बनना चाहता हूं. मेरे घर का दीया आप जलाएंगी या बुझाएंगी आपकी म...'' बोलते-बोलते विक्रम सिंह की आंखें भींग गयीं.

''मैं मुंबई का वकील हूं. लाख रुपये मेरी फ़ीस है, लेकिन आज आपके सामने एक याचक, एक भिखारी बन कर खड़ा हूं.''

उनका दर्द सुनकर लाजवंती भींग गयी. बोली, ''चटोरी का कुछ ग़लत नहीं होना चाहिए.''

''भौजी, मैं वचन देता हूं. बच्चा होने के बाद इसे यहां सुरक्षित पहुंचा दूंगा. शाम की ट्रेन से जाना है. इसका सामान बांध दीजिए. अच्छा, इसका नाम चंदा है न?'' छोटकू साहेब ने चटोरी को देखते हुए पूछा.

''अरे चाचा साहेब, दीदिया बहुत चटोरी है. टीन के डब्बा वाला अठनिया आइस्क्रिम पहिले ई एतना चूस-चूस कर खाती थी कि इसका नाम चटोरी पड़ गया है.'' सुगिया ने कहा तो गंभीर माहौल ठहाकों से गूंज गया.

गांव वालों को बता दिया गया कि चटोरी छोटकी मलकिनी को समहारने गयी है.

मुंबई के ऊंचे-ऊंचे बिल्डिंग, बड़ी बड़ी दुकानें, बाज़ार, चिकनी सड़कें और लोगों की बेहिसाब भीड़ आदि देखकर चटोरी की आंखें चुंधियां गयीं.

चाचा साहेब का स्वर्ग जैसा घर देख वह ख़ुशी के मारे झूम गयी. गांव में उनके यहां हर सरस्वती पूजा में वीडियो पर फ़िलीम दिखाया जाता था. पूरे गांव वाले देखते थे. फ़िलीम में जैसे सुंदर फूलों से सजा बाग़ बग़ीचा, झाड़ फानूस, दुआरी पर एगो उजरा झबरा कुत्ता, आ बड़का-बड़का दरवाज़ा-खिड़की वाला घर दिखाया जाता था, एकदम ओइसे ही महल था. टाइल्स लगा फर्स इतना चिकन आ साफ़ था कि उसे लगा वह पानी पर चल रही है.

डॉक्टर ने चटोरी की सारी जांचें कीं और फिर चाचा-चाची के लैब में तैयार हुए भ्रूण को एक महीन सी ट्यूब के जरिए उसकी कोख़ में प्रत्यारोपित कर दिया गया. पहले उसे बड़ा अजीब लगा. लग रहा था पेट में कुछ अटक गया है.

चाचा-चाची उसे पलंग पर से उतरने नहीं देते थे. काजू, किशमिश, मिठाई, दूध और फल आदि उसे इतना खिलाया जाता था कि वह दंग थी. उसने यह सब चीज़ें खाने के लिए सपने में भी नहीं सोचा था.

गांव में तो बस नून डाला गीला भात, पानीदार तरकारी और मोटी-मोटी रोटी खाती थी, लेकिन यहां का खाना कितना स्वादिष्ट और लज़ीज लगता.

''साला ई काम त बड़ा अच्छा है. दिन भर पड़े-पड़े खाओ और पलंग तूड़ो.'' चटोरी मन ही मन ख़ुश होती.

चाचा साहेब की चमकदार कार में बैठ वह डॉक्टर के पास जाती. वह अपने घर के लैंड लाइन पर फ़ोन लगाते और चटोरी माई, बाबा और बहनों से हंस-हंस कर ख़ूब बतियाती, ''माई, हम बहुते मोटा गये हैं. यहां ख़ूब अच्छा-

अच्छा खाने को मिलता है.''

नव माह होते ही उसकी डिलीवरी हुई और उसने एक लड़का और एक लड़की को जन्म दिया.

छोटकू साहेब लगा कि ख़ुशी से पगला जायेंगे. उसी ख़ुशी के झोंक में उन्होंने केसर के नाम वह घर लिख दिया जिसमें वह रहता था, साथ में एक बीघा खेत और दो लाख रुपये भी दे दिये.

केसर और लाजवंती को इतना धन मिलने की उम्मीद नहीं थी. बेटा भी होता तो उन्हें इतना धनवान नहीं बनाता जितना चटोरी ने बना दिया था.

चाची से दो बच्चे नहीं संभलते थे. छोटकू साहेब ने फ़ोन करके केसर से चटोरी को कुछ और दिन रोकने के लिए कहा. वह मान गया.

चटोरी की छाती में इतना दूध उतरता कि दोनों बच्चे पी-पी कर निहाल हो जाते.

डेढ़ साल बाद वह अपने घर आयी. उसे जींस और टॉप में देख सारे गांव वाले दांतों तले अंगुलियां दबा रहे थे. उसके बात करने का लहज़ा बदल गया था. पहले से ज़्यादा सुंदर भी दिखायी दे रही थी. ब्यूटिशियन के द्वारा बनाये गये उसके सुंदर भौंहों को सारी लड़कियां छू-छू कर देख रही थीं. वह हंसती-मुस्कराती रही.

अपने माटी के टूटहिया घर को उसने पहचाना ही नहीं. सीमेंट बालू का चार कमरों और बड़ा–सा एक हाल का अच्छा घर बन गया था. ऊपर छत भी थी. मुंडेर पर बैठ वह सड़क का नज़ारा देखेगी. बस, दुख था कि आंगन में लगा अमरूद का पेड़ कट गया था वहां डिनर टेबल लगी थी और दीवार में टी. वी. टंगा था.

किचन में कम्मो को गैस चूल्हा साफ़ करते देख उसे माटी का चूल्हा और घर में भरता हुआ धुंआ याद आ गये. माई-बाबा और तीनों बहनों ने अच्छे कपड़े पहने थे. बाबा खेती करते और माई ठाठ से घर में राज करती. उसे बहुत ख़ुशी हुई कि चलो मेरे एक काम से मेरा घर–परिवार आबाद तो हो गया.

रात में लाजवंती ने उससे धीरे से पूछा, ''बिटिया, देह से तुम्हें कोई दिक्कत नहीं है न?''

''ना माई, हम एकदम फीट हैं. चाचा-चाची हमको एतना भकोस के खिलाते थे कि का बताऊं'' कहकर चटोरी अपने कमरे में चली गयी.''

लाजवंती उसे एकटक देखते सोचने लगी कि इसने दो-दो बच्चों को जन्म दिया है फिर भी कहीं से शरीर ढीला नहीं दिखता. ऊपर से और ख़ूबसूरत लग रही है. गाल फूल गये हैं. एकदम चिकना गयी है. इसी के जन्म के बाद हम केतना महीना कमज़ोर थे. सूख कर खटाई हो गयी थी. छाती में दूध नहीं उतरता था. उपरिया दूध ख़रीदना बूते के बाहर था एहिसे इसे सतुआ घोर-घोर के पिलाती थी. इहे है ग़रीब और अमीर के खाने का प्रभाव!

सुगिया के मन में एक बार आया कि वह भी दीदिया वाला काम करे का? उसे भी खूब पइसा मिलेगा और वह भी उतना सुंदर दिखेगी.

लेकिन दूसरे मन से उसे झटक दिया, ''दीदिया अगर शादी बाद माई बनती तो पूरे गांव में मिठाई बांटी जाती. लेकिन वह तो एक सरोगेट मदर बनी थी, जो गांव वालों की समझ से परे था. वह तो यही कहेंगे कि चटोरी नाजायज बच्चों की माई बनी है! अगर यह काम ग़लत नहीं होता तो पूरे गांव और सारे रिश्तेदारों से क्यों छुपाया गया है?

एक दिन चाची आयी थी. चटोरी के बारे में पूछ रही थी. सुगिया के मुंह से निकल आया था कि दीदिया के जुड़वां बच्चे बड़े सुंदर...

''कवन दीदिया...' चाची एकदम पीढ़ी छोड़कर उठ गयी थी, 'चटोरिया के बच्चा...'

''अरे ना बहुरिया, एकरा कहने का मतलब है कि मलकिनी से दू-दू गो बच्चा नहीं समहरता है तो दिन-रात चटोरी उनको गोद में टांगे रहती है, इसलिए कोई भी कह देगा कि उसका बच्चा है.'' लाजवंती ने एकदम सच का परदा टांग दिया था.

यह बात मान चाची तो चली गयी मगर लाजवंती ने ग़ुस्से में सुगिया की दोनों चोटियों को बुरी तरह से मरोड़ दिया. वह दर्द से छटपटा गयी. लेकिन वह तो एकदम अगिया बैताल हुई थी, 'तू अपनी ही दीदिया के इज़्ज़त पर बट्टा लगा रही है रे, मुअनी. आज के बाद ऐसा बोली त तोरा जबान राख लगा के खींच देंगे.'

''तब रे सुगिया, तू हमरा बिना यहां ख़ूब असर-पसर के रही न.'' पहले की तरह ही चटोरी ने प्यार से उसका माथा ठोंकते हुए पूछा.

''हं दीदिया, मजे में थी. दीदिया, हम समझे थे कि तू यहां की गवई भाषा भूल गयी है क्योंकि दोपहर में तू मुहल्ले

वालों के सामने कुछ ज़्यादा ही गिटिर-पिटिर में एकदम शहर वालों की तरह बतिया रही थी.'' सुगिया ने हंसते हुए कहा.

''अरे, यार मैं मुंबई से घूम कर आयी हूं तो कुछ प्रभाव सब पर डालना ज़रूरी था न. वैसे भी मेरी गंवई भाषा मेरी माई भाषा है इसी से तो मेरी पहचान है.

अच्छा, ई बात छोड़. जो मजा वहां है वह यहां कहां? हम तो कहते हैं अगर चाचा साहेब जैसा कोई आदमी सरोगेट मदर के लिए आये तो तू इस बार यह काम करना. ख़ूब अच्छा-अच्छा खाने को मिलता है ऊपर से ढेर पैसा भी!''

''नाहीं दीदिया, हम ई काम नहीं करेंगे. हां, यह ठीक है कि तेरे कारण ही हमरी हालत सुधरी है. पर हम शादी के बाद माई बनेंगे. जब किसी से यह बात छुपायी नहीं जायेगी.

उस बच्चे की छठी बरही होगी. बबुआ-बुचिया को हम गोदी में लेकर दाल, भात, पूड़ी, खीर, पापड़, दनउरी और दो तरह की तरकारी खायेंगे और वही खाना पूरा गांव खायेगा, जैसे कमेसर भौजी का हुआ था.''

''तू अभी से ही मेहरारू जैसे बतियाने लगी.'' कहते हुए चटोरी ने अपने शरीर से चिपकी टॉप को थोड़ा ढीला किया, लगा कि छाती थोड़ी भीगी है.

''दीदिया, तेरा दूध अभी आता है का?''

''वो... वो...'' चटोरी हलका गयी. फिर शांत होकर बोली, ''अरे, नहीं रे, कभी-कभी ऐसा हो जाता है. डॉक्टर दवाई दिया है.''

''दीदिया, ई दूध बड़ा क़ीमती होता है. ज़्यादा दवाई मत खाना नहीं तो दूध सूख जायेगा. फिर अपने बच्चे में दिक्कत होगी. अच्छा दीदिया, तेरे पेट में दू-दू गो बच्चा था दोनों ख़ूब लात मारता होगा.'' सुगिया जानने के लिए बहुत बेचैन थी.

''पता नहीं. हमने ध्यान नहीं दिया था.'' पानी पीते हुए चटोरी ने लापरवाही से कहा.

''अइसे कइसे दीदिया? माई बनने का अनुभव बड़ा मीठा होता है. कमेसर भौजी बताती थी कि उनका बच्चा गिलहरी की तरह पेट के अंदर ख़ूब दायें-बायें भागता था. जब ज़ोर-ज़ोर से लात मारता तो उनका रोआं-रोआं खिल उठता था. चेहरा मुसकराने लगता था. वह हमेशा पेट पर हाथ रख बच्चे को सहलाती, उससे ख़ूब बतियाती. केवल भात-दाल खाने से ही भौजी का चेहरा बड़ा चमकता था. ई सब एहसास तुमको नहीं हुआ?''

''ना. छोड़, यह बात. चल सोने.'' चटोरी एकदम लापरवाही से उठ कपड़े बदल सो गयी.

सुगिया आंख फाड़े उसे देखती रही, 'दीदिया के मन में उन बच्चों के लिए तनिको मोह नहीं है.' सोचते हुए वह सो गयी.

एक साल होते-होते में मामा चटोरी के लिए एक रिश्ता लेकर आ गये. लाजवंती चाहती थी कि वह शरीर से कुछ और मज़बूत हो जाये लेकिन मामा ने नहीं सुना, क्योंकि छोटकू साहेब के दिये हुए रुपये धीरे-धीरे ख़त्म हो रहे थे. साथ ही केसर को दारू पीने की लत लग गयी थी. मामा समझदार थे और खरमास बाद चटोरी को लड़के वालों से दिखाने का फ़ैसला सुना दिया.

उसके पहले चटोरी की ख़ास सहेली की शादी हो गयी थी. शादी की छेड़छाड़ और सहेली को उसके पति के साथ देख उसका भी मन गुदगुदाने लगा था. ख़ुद को दुल्हन बनने का सपना उसकी आंखों में भी तैरने लगा.

अचानक एक दिन छोटकू साहेब का फ़ोन आ गया, चटोरी को उनके पास भेजने के लिए. उनके एक बिज़नेस मैन एन. आर. आई. दोस्त थे. उनको सरोगेट मदर की तलाश थी. वह चटोरी से यह काम करवाना चाहते थे. छोटकू साहेब से दस गुना ज़्यादा रुपये और गिफ़्ट देने वाले थे.

चटोरी की शादी की बात सब भूल गये और योजना बनाने लगे कि आने वाले रुपये को कहां-कहां ख़र्च करेंगे.

वह जाने की तैयारी करने लगी.

''दीदिया, तुझे अपना घर नहीं बसाना है?'' सुगिया का मन दुख से भरा था.

''सुगिया, इस बात से माई-बाबा केतना ख़ुश हैं. कम से कम इस काम से तुम लोग अच्छे से रहती और पेट भर खाती हो. दोनों छुटकी स्कूल जाती हैं और तू कॉलेज़ जाती है.'' चटोरी ने उसका हाथ पकड़ समझाया.

''बाबा, खेती में अच्छा कमा ही रहे हैं, फिर? दीदिया, आख़िर इस पड़ाव का ठहराव कहां है? पैसा बनाने के चक्कर में अपनी देह को इस तरह बरबाद करना क्या ठीक है? मेरे सिर पर हाथ रख कर कसम खाओ कि तुझे शादी करने का मन नहीं है?'' सुगिया ने चटोरी का

हाथ अपने सिर पर रख दिया, ''सच बताना उस लड़के वाले के सामने जाने के लिए तूने सुंदर डिज़ाइन डलवाकर ब्लाउज़ नहीं सिलवाया है?''

चटोरी का कलेजा अंदर तक भीग गया. आंखें छलछला गयीं. मगर उसने आंसू निकलने नहीं दिया.

उसका हाथ नीचे कर ख़ुशी-ख़ुशी बोली, ''भाक पागल, तू तो पूरा पागल है. कॉलेज़ जाने से बड़ी-बड़ी बातें बनाना सीख गयी है. बाबा से कह देती हूं, वहां तेरी ही शादी कर देंगे.''

और वह दुबारा चली गयी.

जिस दिन सुगिया की शादी थी उस दिन पता नहीं क्यों चटोरी का मन नहीं लग रहा था. बार-बार उसकी आंखें बरस पड़तीं, 'सुगिया, मेरे एक बार सरोगेट मदर बनने से बाबा की महत्वाकांक्षा बढ़ गयी थी. वह और रुपये आने के इंतज़ार में थे.

शायद घर में किसी को पता नहीं है बाबा ख़ुद चाचा साहेब के पास फ़ोन करके बोले थे कि अगर वैसा काम कोई दुबारा करवाने आये तो उसे याद करेंगे. हमारे मोबाइल में ऐसा फंक्शन है कि जो भी बात की जाती है सब रिकॉर्ड हो जाता है. हम शादी करने के लिए पूरी तरह से तैयार और फीट थे लेकिन वह रिकॉर्ड सुनकर हमारे सारे सपने गंगा जी में बह गये.

तू कह रही थी कि माई बनना सुखद होता है जो लड़की शादी के बाद बनती है. तू ठीक कह रही थी. हमने जानबूझ कर चाचा साहेब के बच्चे से मोह नहीं रखा था. हमें पता था कि जिस बच्चे को हम जन्म देंगे ऊ कभी हमको माई नहीं कहेगा.

यहां आकर चाचा साहेब हमसे एगो सरकारी क़ाग़ज पर दस्तख़त करवाये थे कि उस बच्चे पर हमारा कभी अधिकार नहीं होगा.

उन्होंने पैसा दिया और हमने अपनी कोख़ में रखा हुआ उनका जीता जागता बच्चा दिया. जैसे दुकानदार पैसा लेकर सामान देता है.

सच कह रही हूं, दवाई खाने के बाद भी मेरी छाती में दूध आ जाता था. उस दूध में इतना उफान रहता था कि मेरा मन एकदम बेचैन हो जाता. चाहती थी दोनों बच्चों को अपनी छाती से लगा अमृत से नहला दूं. पर चाहकर भी कुछ नहीं कर पाती थी.'

चटोरी सिर को दीवार से टिका कुछ देर के लिए खामोश हो गयी. लेकिन आंखें एक धार से बहे जा रही थीं. ए. सी. की ठंडी हवा में भी लगा कि दम घुट रहा है. उसने पलंग पर से उतर कांच की खिड़की खोल दी.

ठंडी हवा का एक झोंका उसके तन को छू गया. आसमान में तारे टिमटिमा रहे थे. साइरन बजाती एंबुलैंस की आवाज़ और उसकी जलती लाल बती को देख उसने चौथी मंज़िल से नीचे देखा.

सड़क उस पार प्रेग्नेंट मिसेज़ कुलकर्णी को स्ट्रेचर पर लाद गाड़ी के अंदर ले जाया जा रहा था. उनके साथ सास थी. दूसरी गाड़ी में पूरा परिवार था. दूर जाती हुई एंबुलैंस की आवाज़ उसके कानों से टकराती रही.

फिर उसके मन की गांठ खुलने लगी. 'जानती है सुगिया, जुड़वां बच्चों के कारण मेरा भी पेट बहुत बड़ा हो गया था. उस समय मैं भी मिसेज़ कुलकर्णी की तरह स्ट्रेचर पर लाद कर हॉस्पिटल पहुंची थी. मुझसे ज़रा भी चला नहीं जाता था.

मेरे दोनों बच्चे ... ना ना... चाचा साहेब के बच्चे हमें कितने लात मारते थे कि उस लात खाने में एक अनोखा ही सुख था. एक अलग ही ख़ुशी मिलती थी.

एक दिन ऐसे ही वे दोनों मेरे पेट के अंदर ख़ूब फ़ुर्र-फ़ुर्र फुदक रहे थे. दायें-बायें धमा चौकड़ी मचाये थे. एक बारगी हम भूल गये कि ये मेरे बच्चे नहीं हैं. भूल से और माई बनने के सुखद अहसास से हम इतना रोमांचित और ख़ुश थे कि भावातिरेक में बड़े से पलंग पर लेटे अपना पेट सहलाते उस बच्चे से हम ख़ूब बतियाने लगे — बबुआ, बचिया, आपको पता है हम आपकी माई हैं, ना ना ममी हैं. हमें ममी कहोगे न? हम तुम्हारा नाम गोपाल जी रखेंगे.

वहीं जो माखन चोरा के खाते थे. अगर लड़की होगी न तो उसका नाम दुरगा जी रखूंगी. ठीक न मेरे, बबुआ, बुचिया!

'चटोरी...' चाची एकदम जोर से चिल्ला पड़ीं. उन्होंने सारी बातें सुन ली थीं. मुझे ख़ूब डांटा, 'हम अपने बच्चे को सिर्फ़ तेरी कोख़ में रखने के लिए ही इतने सारे रुपये ख़र्च कर रहे हैं और तू इसे अपना बच्चा बनाने पर तुली है. भूल गयी कि तू हमारे घर की नौकरानी है. आज से इस बच्चे से ज़रा भी मोह-ममता मत रखना, नहीं तो मुझसे बुरा कोई नहीं होगा. हम अपने बच्चे को हेल्दी रखने के लिए ही तुझे

फल, मेवा खिलाते हैं और कुछ नहीं. तू मुझे बच्चा देगी और मैं तुम्हें रुपये! बस इतना ही नाता है हमारा और तुम्हारा. आगे से सचेत रहना.'

उस दिन हम ख़ूब रोये थे ख़ूब! सारे एहसास सारी ममता को हमने मार दिया. इसलिए लापरवाह रही बेपरवाह रही.

उन छः माह के बच्चों को छोड़ जब हम ट्रेन में चढ़े थे, तो लगा कि मेरे दोनों हाथ कट गये या दोनों आंखें अंधी हो गयीं. आत्मा छिन-भिन हो गयी. सारे रास्ते हम खून के आंसू रोये थे.' मन ही मन बतियाते उन बच्चों को याद करते चटोरी की आंखें भीग गयी.

दीवार घड़ी ने चार बार घंटी बजायी. आसमान के चांद-तारे अपनी ड्यूटी पूरी कर घर जाने की तैयारी में थे. चिड़ियों का चहचहाना शुरू हो गया था. दिन की धूल और धुएं से भरी गर्म हवा ठंडी और सुगंधित बह रही थी.

ठंड से चटोरी को सिरहन होने लगी. वह ख़ुद में ही सिमट कर बोल पड़ी, 'भोर हो गयी! सुगिया, तेरा अबी सिंदूर दान हो रहा होगा. दूल्हे मियां अपने घर से लाये सिंधोरा में से पीले सिंदूर से तेरी मांग बहोर रहे होंगे. तू ख़ुश रह...' रोकते-रोकते में उसकी हिचकी बंधी रुलाई बांध तोड़ कर फूट पड़ी.

पलंग पर बैठ वह बहुत देर तक रोती रही, 'सरोगेट मदर बनने का मेरा यह बिज़नेस बन गया है, सुगिया. अभी ढाई महीना का बच्चा मेरे पेट में है और अभी से ही डॉक्टर ने दूसरे आदमी से सेटिंग कर मुझे तीसरी बार सरोगेट मदर बनने के लिए बुक कर लिया है और यह बात बाबा को पता है. वह एकदम खुल कर कह दिये हैं कि हम यह काम मन लगा कर करें. माई को भी अब अच्छे-अच्छे गहने-कपड़े पहनने में अच्छा लग ही रहा है.

दुबारा सरोगेट मदर बनने का जब हमें बुलावा आया था तब तो उसने एक बार भी मेरी राय नहीं पूछी. पहले की तरह हो हल्ला नहीं किया. बस, यही कहा — 'रास्ते के लिए ठेकुआ निमकी बना देती हूं.' इस बात से मुझे कितना दुख हुआ था तुझे क्या बताऊं? माई मुझे इस बार रोक नहीं सकती थी? मेरी शादी का हवाला देकर बाबा को समझा नहीं सकती थी? सुगिया तू मान चाहे मत मान लेकिन बाबा के मन में कम्मो और बुचिया को मेरी तरह बनाने की खिचड़ी पक रही है. तू शुरू से ही पढ़ाई, नौकरी और शादी

के फेर में रही थी, इसलिए वह तुझ पर हाथ नहीं आजमाये.

कम्मो और बुचिया की बात जिस दिन सच हो गयी. ब्रह्म बाबा की क़सम! उस दिन हम माई-बाबा से इतना लड़ेंगे कि वह कभी सोचे नहीं होंगे. हमारे अरमान आंसू में बिखर गये हैं, पर अपनी दोनों छोटकी बहनों को अपने जैसा नहीं बनने दूंगी.

सच में सुगिया इस पड़ाव का पता नहीं कहां ठहराव है? नाही कोई ठिकाना है!

अच्छा छोड़, अब तू खोइंछा बदलवाने जनमासा में गयी होगी. चल बहन, तू आबाद रह!

पांच बज गये अब तेरी विदाई होगी, अच्छा ठीक. अरे, मेरी लड़ाकू बहन सुगिया, तू ससुराल जाने के लिए इतनी उतावली हो गयी है कि मुझ दीदिया से अंकवारी भेंट भी नहीं करेगी क्या?' चटोरी ने दोनों हाथ फैला अपने सीने से समेटा जैसे महसूस हुआ सुगिया उसके गले लग बिलख रही हो. उसके भी आंसू गंगा की तरह बहने लगे.

***द्वारा श्री भगवान प्रसाद, कोयला दुकान,***
***राजा बाज़ार, कटेया रोड,***
***बिहिया - ८०२१५२,***
***जिला- भोजपुर (बिहार),***
***मो.-७०५०१०७२८५/७२५६८८५४४१***
***ई मेलः- n.sudipti@gmail.com***

# सरलता

सुषमा मुनींद्र

स्वस्तिक को जैसे दो साथी मिल गये हैं. उसके घर के ठीक बगल की ज़मीन में भवन निर्माण कार्य शुरू होने से चहल-पहल है. उसके घर के आस-पास की बहुत सारी खाली ज़मीन में गिनती के कुछ मकान, कब बन गये उसे नहीं मालूम. स्कूल आते-जाते वह जब कभी दायें-बायें गर्दन घुमाता, पर्याप्त दूरी पर अचानक कोई मकान ऐसे दिखायी दे जाता मानो ज़मीन फाड़कर अभी-अभी उग आया है. वह उस अचानक दिख गये मकान को लेकर कुछ नहीं सोचता. यह भी नहीं, उस नये मकान में कोई उसकी उम्र का बच्चा हो सकता है.

वस्तुतः वह नपी-तुली लगभग तयशुदा दिनचर्या में किये जाने वाले कुछ नियत कार्यों के अतिरिक्त कुछ भी सोचना-करना नहीं सीख पाया.

वक़्त उसे इतनी फ़ुर्सत नहीं देता जब वह अपने आस-पास के घटित को जाने अथवा अपने उम्र के बच्चों की खोज कर उनसे हेल-मेल बढ़ाये. वह साइकिल पर सुबह स्कूल के लिए निकलता है. दोपहर को लौटता है. पढ़ाई, ट्यूशन, टी. वी., कंप्यूटर उसका पूरा समय सोख लेते हैं.

पापा कहते हैं, ''स्वस्तिक एक मिनिट भी वेस्ट करोगे तो रेस में पीछे छूट जाओगे. अब हंड्रेड परसेंट का ज़माना है. सिर्फ़ टॉपर्स के लिए जगह बची है.''

उस जगह को पाने के लिए उसे पढ़ाई में डूब कर रह जाना होता है. वह अकेला बच्चा है. अपने-अपने दफ़्तर में व्यस्त मम्मी-पापा उसे जो थोड़ा–सा समय देते हैं, उसमें कुछ ज़रूरी और नियत बातें ही रोज़-रोज़ दुहराई जाती हैं. यह ज़रूर है वह सीमाओं में बंधी ज़िंदगी से ऊबता नहीं, क्योंकि उसे विकल्पों की जानकारी नहीं है. वह सोचता है उसकी जो ज़िंदगी है, ज़िंदगी ऐसी ही होती है.

यह पहली बार है जब उसकी दिनचर्या में परिवर्तन हुआ है. पहली बार जान रहा है वह अकेलेपन का अभ्यासी ज़रूर है पर कोई साथी मिल जाये तो उसका रोमांच अद्‌भुत होता है. स्वस्तिक के कमरे की खिड़की इसी ओर खुलती है. वह खिड़की से देखता है, तमाम दिन ट्रकों में मैटेरियल आता है — सोलिंग, ढोके, ईंट, बजरी, लोहा. रेजा, मज़दूर चीखते-हंसते हैं.

उसने शाम को ट्यूशन से लौटते हुए देखा उसकी खिड़की के बहुत पास पीली बरसाती का मध्यम ऊंचाई का एक तंबू बनाया गया है. बिजली के खंभे से कनेक्शन लेकर तंबू में बल्ब जलाया गया है. एक लड़का तंबू के पीले प्रकाश में कुछ काम कर रहा है. दूसरा बाहर ईंट के धधकते चूल्हे में रोटियां सेंक रहा है. दोनों मज़दूर लड़के अट्ठारह, उन्नीस वर्ष के होंगे. स्वस्तिक की इच्छा हुई तंबू के भीतर प्रविष्ट होकर देखे वहां रहना कैसा लगता है. पापा कहते हैं उनकी इच्छा है वे कभी किसी ठंडे प्रदेश में तंबू तानकर कुछ दिन रहें. बर्फ़ का गिरना देखें. हां, तंबू के भीतर पर्याप्त गरमाहट हो. पापा की परिकल्पना स्वस्तिक को सदैव रोमांचित करती है. पीले तंबू को देखकर वह इस तरह कौतूहल और आनंद से भर गया जैसे बड़ी उपलब्धि हस्तगत हुई है.

''भइया, गरम रोटी खाओगे?'' रोटी सेंक रहे लड़के का नाम लोली है.

दोनों लड़के जान चुके हैं स्वस्तिक सामने घर में रहता है.

''तुम दोनों इस तंबू में रहोगे?'' स्वस्तिक ने लोली के प्रश्न के उत्तर में प्रश्न किया.

''हां! यहां अभी सुनसान है. मैटीरियल चोरी चला जाता है. मालिक हम दोनों भाइयों को तकवाही के लिए रखे

हैं.''

दूसरा लड़का छोटन, हाथ का काम रोक कर स्वस्तिक को देखने लगा.

''तुमको ठंड नहीं लगेगी?'' स्वस्तिक ने पूछा.

''पैरा बिछा लिये हैं. पैरा बहुत गरमाता है.'' लोली बोला.

''डर तो लगेगा?''

''काहे का डर?''

''सांप का. जहां तुम्हारा तंबू है ठीक इसी जगह अभी बरसात में ये लंबा सांप निकला था.''

''यह बलब है न. सर्प, प्रकास और मनयी जात से डरता है. अउर फेर तकवाही का पइसा मिलेगा. हमें त भइया पेट पालना है. डरेंगे त कइसे होगा.''

घर आकर स्वस्तिक ने टी. वी. नहीं चलाया. उसका चित्त तंबू में लगा है. खिड़की खोलकर उन लड़कों की गतिविधि देखने लगा. वह आमतौर पर खिड़की नहीं खोलता. सांप या चोर या भूत आ जाये तो? कितना डर है. आज उसे लोली और छोटन की गतिविधि देखना अच्छा लग रहा है.

स्वस्तिक सुबह स्कूल के लिए निकला तब दोनों लड़के कुल्ला-मुखारी कर रहे थे. उसे गणवेश में सजा देख लोली ने सलाम ठोंका, ''भइया स्कूल?''

''हां, रात में डर तो नहीं लगा?

''एकदम नहीं.'' लोली थोड़ा हंसा.

''फिर मिलते हैं.''

स्वस्तिक की इच्छा हुई तंबू को भीतर से देखे पर अभी स्कूल जाना है. दोपहर में लोली-छोटन काम में लगे रहेंगे. ट्यूशन से लौटते हुए देखेगा.

पूस-माघ के दिन बहुत जल्दी चुक जाते हैं. एकाएक अंधेरा उतर आता है. स्वस्तिक ट्यूशन से लौटा तब अंधेरा हो गया था. दोनों लड़के तंबू के भीतर थे. उसने साइकिल की घंटी बजाकर उनका ध्यान आकृष्ट किया.

छोटन ने तंबू से झांका, ''कहां गये थे भइया?''

''ट्यूशन. आज खाना नहीं बनेगा?''

''सुबह की रोटियां रखी हैं. प्याज और नमक के साथ खा लेंगे.''

छोटन की बात सुन स्वस्तिक दयार्द्र हो गया — बेचारे रूखा-सूखा खायेंगे. वह साइकिल खड़ी कर तंबू के पास आ गया और ताक-झांक करने लगा.

''अंदर आओ न.'' लोली उसके स्वागत में उठकर खड़ा हो गया.

स्वस्तिक को समीप पाकर दोनों लड़के स्वतःस्फूर्त हो ऐसे खिल उठे जैसे स्वस्तिक का वहां होना गौरवप्रधान घटना है.

स्वस्तिक तंबू के भीतर आ गया. बुद्धि कौशल से बनाया गया सुंदर तंबू. एक ओर सीमेंट की भरी बोरियां रखी हैं. बीच में पैरा और कथरी का बिस्तर है.

''तंबू अच्छा है पर गलन बहुत है.'' स्वस्तिक बोला.

***: प्रकाशन :***

**छोटी सी आशा (उपन्यास), गृहस्थी कहानी संग्रह; मेरी बिटिया; नुक्कड़ नाटक, महिमा मंडित, मृत्युगंध, अस्तित्व, अंतिम प्रहर का स्वप्न, ऑन लाइन रोमांस, अपना ख़्याल रखना, जसादी एक्सप्रेस, विलोम, तुम्हारी भी जय-जय, हमारी भी जय-जय. तीन अन्य कहानी संग्रह प्रकाशित.**

***: विशेष :***

**कहानियों का मराठी, मलयालम, कन्नड़, तेलुगु, पंजाबी, गुजराती, उर्दू, अंग्रेज़ी, उड़िया आदि भाषाओं में अनुवाद; कहानी संग्रह 'विलोम' व उपन्यास 'छोटी सी आशा' का डॉ. सुशीला दुबे द्वारा मराठी अनुवाद; कहानियां प्रतिनिधि कहानी संग्रहों में संकलित; गणित सरपंचिन, दर्द ही जिसकी दास्तां रही आदि कहानियों का मंचन.**

***: पुरस्कार :***

**म. प्र. साहित्य अकादमी का सुभद्रा कुमारी चौहान पुरस्कार; निर्मल साहित्य पुरस्कार (म. प्र.); कमलेश्वर (वर्तमान साहित्य) कथा पुरस्कार; प्रेमचंद (हंस) कथा सम्मान आदि.**

''ड्यूटी कर रहे हैं त रहना पड़ेगा.'' लोली वाचाल है. अपने लेविल पर स्मार्ट भी.

स्वस्तिक के ट्यूशन से लौटने का समय हो चुका था. उसकी प्रतीक्षा कर रही मम्मी घर के बाहर निकल आयी. देखा गेट पर उसकी साइकिल खड़ी है. स्वस्तिक कहां है? वे गेट से बाहर सड़क पर आ गयीं.

''स्वस्तिक.'' उन्होंने जोर से पुकारा.

''यस मम्मी.'' स्वस्तिक तत्क्षण तंबू से बाहर आया.

''सीधे घर आना चाहिए न. मैं परेशान हूं. यही है तुम्हारा स्टैंडर्ड, एजुकेशन, कल्चर? लेबर क्लास में इंटरेस्ट ले रहे हो?''

''मम्मी वो .....''

''तुम्हारी पिटाई होगी.''

स्वस्तिक के बचाव हेतु लोली बोला — ''भइया तंबू को भीतर से देखना चाहते थे.''

''चलो अंदर.'' लोली की भरपूर उपेक्षा कर मम्मी पलट पड़ीं.

मम्मी का व्यवहार स्वस्तिक को अनुचित लगा. उसने आश्वस्त करती दृष्टि से लोली को निहारा और साइकिल लेकर घर चला आया.

मम्मी अभी शांत नहीं हुईं, ''स्वस्तिक तुमसे कहा न अपने से मतलब रखो. दुनिया चालाक है. तुम्हें कोई भी बेवकूफ बना सकता है.''

''मम्मी मुझे आज तक कोई बेवकूफ नहीं बना पाया. मैं बेवकूफ नहीं चालाक हूं. तुम बेकार परेशान हो.''

मैं परेशान हूं क्योंकि तुम बेवकूफ हो.''

''ममा ...''

''अच्छा, जितना ज़रूरी हो उतना बोला करो. किसी के बीच न अनावश्यक रूप से घुसपैठ करो न हस्तक्षेप. एटीकेट सीखो.''

स्वस्तिक चुप रहा. कुछ बोलने का मतलब है मम्मी के आग्नेय भाव को उद्दीप्त करना.

रात का खाना खाते हुए स्वस्तिक को ध्यान आया लोली और छोटन प्याज और नमक के साथ सूखी-बासी रोटियां खायेंगे. सब्ज़ी बच गयी है. रोज़ बचती है पर मम्मी देंगी नहीं. क्या किया जाये? मम्मी-पापा खाने के बाद अपने कमरे में जाकर टी. वी. देखने लगे. स्वस्तिक ने सावधानीपूर्वक डोंगे से थोड़ी सब्ज़ी बाउल में डाल ली. खिड़की खोलकर मद्धिम स्वर में लोली को पुकारा.

''का है भइया?'' लोली खिड़की से आ लगा.

''सब्ज़ी लो.''

''नहीं. आपकी मम्मी बिगड़ेंगी.''

''लो न.''

लोली ने सब्ज़ी ले ली.

बाउल धोकर खिड़की से दे गया.

स्वस्तिक इन दिनों खिड़की खुली रखता है. खुली खिड़की से लोली और छोटन की बातें सुनता है. दोनों देर रात तक ऊंची आवाज़ में हंसते-बतियाते हैं. फ़िल्मी गाने गाते हैं. स्वस्तिक उनकी बातों, हंसी, गीतों को सुनकर पुलकित होता है. ये दोनों कितने स्वतंत्र हैं. गाते-बजाते हैं. आग तापते हैं. न पढ़ने की मगजमारी न काम्पीटिशन का टेंशन. वह कभी भी, कहीं भी फ्री नहीं है. स्कूल में टीचर की कड़ाई और दंड. घर में मम्मी-पापा की बंदिशें. रात में अंधेरे का डर. नींद में डरावने सपनों का डर. दिन में पढ़ाई की चिंता. काम्पीटिशन का तनाव. असुरक्षित भविष्य के ख़तरे. तमाम दिन, तमाम रात डर और तनाव और डिप्रेशन. यह अस्थायी तंबू और लोली-छोटन की आत्मीय उपस्थिति ही है जो कुछ देर को ताज़गी और आनंद देती है. यह उसकी ज़िंदगी का काफ़ी बड़ा चेंज़ है.

उधर लोली ऊंचे सुर में तान छेड़े हुए है, 'आये हो मेरी ज़िंदगी में तुम बहार बन के ...'

लोली कितनी अच्छी तर्ज़ निकालता है. स्वस्तिक अनायास खिड़की पर आ गया.

''क्या हो रहा है स्वस्तिक?'' पापा एकाएक कमरे में आ गये.

''जी... पापा...'' स्वस्तिक हड़बड़ा गया.

''इधर देख रहा हूं तुम खिड़की खुली छोड़ देते हो. ठंड लगेगी, बीमार पड़ोगे, स्कूल नहीं जा सकोगे. कुछ दिन स्कूल न जाने का मतलब है क्लास में पीछे रह जाना.''

कहते हुए पापा खिड़की बंद करने लगे. लोली का गायन उन तक पहुंचा. खिड़की बंद किये जाने की आहट सुन लोली ने पूछा, ''का भइया, सोने चले? खिड़की बंद कर रहे हो.''

स्वस्तिक इन मज़दूर लड़कों के कारण खिड़की खोलता है? इनमें रुचि ले रहा है? मित्रता कर रहा है. इनका गाना सुनता है. बिगड़ रहा है. बर्बाद हो रहा है.

पापा चीख़े, ''लड़का पागल हुआ है? आधी रात को गला फाड़कर गा रहा है.''

पापा ने खिड़की बहुत ज़ोर से बल्कि असभ्यता से बंद की. वह दोनों लड़कों को अपनी घृणा और रोष से अवगत करा देना चाहते थे.

स्वस्तिक घबराकर अपने बिस्तर पर आ गया.

''स्वस्तिक, खिड़की तोड़कर चोर घुसेगा तब तुम मानोगे.''

''चोर नहीं आयेगा. वो उधर लोली और छोटन हैं न.''

स्वस्तिक को यही तर्क सूझा.

''इनके नाम भी जान गये? ये दोनों ही चोर हों तो?''

''तब तो कहिए मैटीरियल चुरा लें. जबकि ये दोनों सिक्योरिटी के लिए रखे गये हैं.''

''मैटीरियल कहां ढोकर ले जायेंगे? ये लोग पैसा-रुपया चुराते हैं. बच्चों को फुसलाते हैं. घर के भेद लेते हैं. चोरी करते हैं. अब यह खिड़की न खुले.''

चेतावनी देकर पापा कमरे से चले गये.

स्वस्तिक चिंतित हो गया. पापा इतने ज़ोर से बोल रहे थे. लोली और छोटन ने बातें सुनी होंगी तो उन्हें बुरा लगेगा.

स्वस्तिक नहीं मानता लोली और छोटन चोर हो सकते हैं. वह अभी जीवन और जगत के फेर में नहीं पड़ा है. इसलिए उसके भीतर प्रकृति प्रदत्त मूल विश्वास क़ायम है. वह अपनी दस वर्षीय मासूमियत और कोमलता में किसी पर भी अविश्वास नहीं कर पाता है. किसी के प्रति निराधार धारणा नहीं बनाता. प्रकृति मनुष्य को निर्मल, निष्कपट, निष्कलुष बनाकर इस पृथ्वी पर भेजती है. इसीलिए शिशु, बहुत सहज, सरल, निर्भीक होता है. फिर उसके संरक्षक उसे दुनियावी गणित समझाते हुए उसके भीतर चतुराई, स्वार्थ, स्वहित, संदेह, अविश्वास के भाव भरते हैं. बच्चा हर किसी पर संदेह करता हुआ रूढ़ और शातिर हो जाता है. स्वस्तिक ने सुबह स्कूल जाते हुए लोली और छोटन को देखा. वे दोनों मुस्कराये. अर्थात ये लोग नाराज़ नहीं हैं. इन्होंने पापा की बातें नहीं सुनीं. स्वस्तिक की चिंता दूर हुई. प्रतिउत्तर में मुस्कुराकर वह आगे बढ़ गया.

आज तमाम दिन छोटन नहीं दिखाई दिया. क्या उसे सांप ने डस लिया? क्या वह मर गया? लोली अकेले डरेगा. स्वस्तिक बेचैन है. ट्यूशन से लौटकर पूछने लगा — ''छोटन नहीं दिख रहा है.''

लोली बोला, ''काम करते हुए उसके पैर में ढोका गिर गया. अंगूठे से बहुत ख़ून निकला. मरहम-पट्टी करवानी पड़ी.''

''छोटन कहां है?''

''मालिक ने कहा काम नहीं कर पायेगा. बैठे की मजूरी नहीं देंगे. दो-चार दिन को घर चला गया है.''

''तुम अकेले डरोगे.''

''नहीं. आप खिड़की खोल देते हो. सहारा लगता है.''

''डरना मत. अच्छा.''

स्वस्तिक उसे सुरक्षा नहीं दे सकता. अपनी उपस्थिति से दिलासा तो दे सकता है.

चौथे दिन छोटन लौटा.

''भइया, छोटन आपके लिए कुछ लाया है.'' लोली खिड़की से झांक रहा है.

''अच्छा.'' स्वस्तिक तत्परता से बाहर आ गया.

''यह बैलगाड़ी.'' छोटन के हाथ में बांस की खपच्चियों और नन्हीं कीलों के प्रयोग से बनायी गयी ख़ूबसूरत खिलौना बैलगाड़ी है.

स्वस्तिक ललचा उठा, ''ब्यूटीफ़ुल. कितने में ख़रीदी?''

''मैंने बनायी है. हम बसोर हैं. झौआ-टोपरी-सूप बनाते हैं.''

''लाओ, मुझे दो.'' स्वस्तिक ने नहीं सोचा था छोटन उसका इतना ध्यान रखेगा. उसके पास बहुत से स्वचालित खिलौने हैं पर इस खिलौने की बात ही अलग है. छोटन और लोली इस तरह प्रसन्न हैं जैसे स्वस्तिक ने खिलौना स्वीकार कर उन्हें उपकृत किया है.

''छोटन, तुम्हारा घाव कैसा है?''

''घाव भर रहा है. काम कर सकता हूं. इतने दिन बेकार बैठना पड़ा. मजूरी मारी गयी.''

स्वस्तिक को वह लुभावनी बैलगाड़ी अपनी निजी उपलब्धि प्रतीत हो रही थी. उसने उत्साह में उस बैलगाड़ी को कला कक्ष में सजा दिया. वह इतना आनंदित था कि दफ़्तर से लौटी मम्मी को कला कक्ष में खींच ले गया —

''मम्मी वह देखो.''

''अरे सुंदर है. कहां से लाये?'' हस्तकला की अद्‌भुत क़ारीगरी से मम्मी प्रभावित दिखीं.

''छोटन ने गिफ़्ट की.''

''और तुमने ले ली? स्वस्तिक किसी से कुछ लेना अच्छी बात नहीं है. कहा न तुम उनमें इंटरेस्ट न लो.'' मम्मी अन्यमनस्क हो उठीं.

''क्या मना करना अच्छा लगता?''

''तुम कोई संकट खड़ा करोगे. यह लोग जानते हैं मैं और तुम्हारे पापा दिनभर दफ़्तर में रहते हैं. तुम घर में अकेले होते हो. ये किसी बहाने घर में घुसेंगे. सब ले-देकर चंपत हो जायेंगे.''

''वे ऐसा क्यों करेंगे?''

''क्योंकि तुम बेवकूफ हो. जबकि तुम्हारी उम्र के लड़के बहुत होशियार होते हैं.''

मम्मी देर तक डपटती, समझाती रहीं.

दूसरे दिन मकर संक्रांति थी.

मम्मी-पापा किसी आयोजन में दोपहर के भोजन में चले गये. उनके जाने के तुरंत बाद स्वस्तिक बाहर निकला. ख़ूब हवा चल रही थी. धूप नरम थी. उसने गेट से झांक कर देखा, लोली, छोटन तंबू के पास पड़े ढोकों पर बैठे हुए गन्ना चूस रहे हैं.

''आज काम बंद है क्या?'' स्वस्तिक ने पूछा.

''आज खिचड़ी (मकर संक्रांति) है. रेज़ा-मजूर मेला-ठेला करने गये हैं. हम भी गये थे.'' लोली बोला.

स्वस्तिक की इच्छा होती है टमस नदी के तीर पर लगे संक्रांति मेले में जाये. भीड़-भाड़, चकरी, झूले का मज़ा ले. पापा नहीं ले जाते, ''स्वस्तिक तुम्हें भीड़-भाड़ में घुटन नहीं होती? वहां मिलता क्या है? वही गन्ना, लाई, लुड्डुइया, फुग्गा, पिपहरी, गंवई लोगों के धक्के, इन्फेक्शन, फंगस, वायरस.''

स्वस्तिक को लगा लोली व छोटन उससे कहीं अधिक स्वतंत्र हैं. इनके पास पर्याप्त पैसा नहीं है पर ये लोग मिलजुल कर, हंस बोलकर प्रत्येक त्योहार का मज़ा लेते हैं.

''भइया तुम मेला नहीं गये?'' छोटन पूछ रहा है.

''नहीं. पापा-मम्मी पार्टी में गये हैं.''

''पापा-मम्मी नहीं हैं? हम झूला झूल सकते हैं?'' लोली ने इतने मीठे स्वर में निवेदन किया कि स्वस्तिक मना नहीं कर सका. वह मम्मी की चेतावनी को निर्देश मात्र

मानकर भूल चुका है.

लोली व छोटन गेट खोलकर लॉन में आ गये. लॉन में हरी मखमली घास है. लॉन के एक कोने में चौड़े पटरे वाला झूला है. वे दोनों थोड़ी देर झूले फिर स्वस्तिक को झुलाने लगे. साथियों के साथ झूलने में स्वस्तिक को मज़ा आ रहा था. उसने लोली और छोटन की बहुत-सी बातें जानीं.

लोली ने बताया, ''हमारे बहुत सारे भाई-बहन हैं. हम न ठीक से खा सकते हैं, न पहन सकते हैं, न पढ़ सकते हैं, न इलाज़ करा सकते हैं. हमारी अम्मा बहुत बीमार हैं. हमारे पास इतने पैसे नहीं हैं जो हम उनका ठीक से इलाज़ करा सकें. अम्मा बिना दवाई के मर जायेंगी.''

स्वस्तिक पसीजकर कहने लगा, ''मेरे पापा बहुत सारे डॉक्टरों को जानते हैं. मैं उनसे कहूंगा तुम्हारी अम्मा को किसी अच्छे डॉक्टर को दिखा दें. सरकारी अस्पताल से मुफ़्त दवाई दिला दें. क्या तुम अपनी अम्मां को यहां ला सकते हो?''

''हां, तुम अपने पापा से पूछ लो. हम अम्मां को ले आयेंगे. अम्मा अच्छी हो जायेंगी. तुम्हें बहुत असीसेगी (अशीष देगी).'' लोली आशावान हो उठा.

स्वस्तिक ने बड़ा साहस करके पापा से कहा, ''पापा, ये जो तंबू वाला लोली है न, उसकी अम्मां बहुत बीमार है.

आप उसे अच्छे डॉक्टर को दिखाकर सरकारी अस्पताल से कुछ मेडीसिन दिला दीजिए.''

पापा तमक गये, ''स्वस्तिक वे मज़दूर लड़के तुम्हारे आदर्श बने हुए हैं. तुम अपना समय बर्बाद कर रहे हो.''

''किसी ग़रीब की मदद की जाये क्या यह अच्छी बात नहीं है?''

''तुमने ग़रीबों का ठेका लिया है? स्वस्तिक तुम दिन भर अकेले रहते हो. तुम्हें समझदारी सीखनी चाहिए. न मेरे पास वक़्त है न तुम्हारी मम्मी के पास. उन लड़कों की अम्मा का सिर दर्द हम नहीं ले सकते.''

पापा-मम्मी उसे देर तक उपदेश देते रहे. मासूम बच्चे पर इस तरह समय, स्थितियों का दबाव पड़ता है. उसका हृदय शून्य, मस्तिष्क चौकन्ना होता जाता है. प्रत्येक साधन और माध्यम से अपना हित और स्वार्थ साधते हुए उसका यंत्रीकरण हो जाता है. फिर वह मनुष्य न रहते हुए मनुष्य की तरह का कुछ हो जाता है.

पापा-मम्मी के हितोपदेश सुन स्वस्तिक कष्टदायी प्रक्रिया से गुज़रा. अपनी स्मार्टनेस में लोली को भरोसा नहीं देना चाहिए था. वैसे पापा के लिए यह एक छोटा काम है. उनका पैसा भी ख़र्च नहीं होगा. अगरचे सौ-पांच सौ ख़र्च होता है, पापा वहन कर सकते हैं.

स्वस्तिक ट्यूशन से लौटा. लोली व छोटन चूल्हे पर खिचड़ी बना रहे थे — ''भइया, तुमने पापा से पूछा?'' स्वस्तिक लज्जित हुआ, ''अभी नहीं पूछ पाया. आज तंबू में अंधेरा है.''

''बल्ब नहीं जल रहा. लगता है खंभे से कनेक्शन ढीला हो गया है.''

स्वस्तिक नज़रें चुराते हुए अपने कमरे में आ गया. लोली और छोटन समझ गये होंगे उनको सहायता नहीं मिलेगी.

स्वस्तिक अशांत है. न रात का खाना अच्छा लगा, न पढ़ाई में चित्त लगा. खिड़की खोलकर जानना-टोहना चाहिए वे दोनों क्या कर रहे हैं. अचार या सॉस तो नहीं चाहिए? वह मम्मी की दृष्टि बचाकर उन्हें कुछ देता रहा है. पर खिड़की खोली और पापा आ गये तो? कैसा संकट है.

वह पुस्तक खोलकर पढ़ने का नाटक करता रहा. फिर निर्धारित समय पर लेट गया. नींद नहीं आयी. जब पापा-मम्मी के रूम की लाइट बुझ गयी, वह उठा. बहुत संभलकर आहिस्ता से खिड़की खोली. तंबू अंधेरे में गुम है. लोली कहता है सर्प प्रकाश से डरता है पर आज तो प्रकाश नहीं है. सर्प आ सकता है. इन्हें डस सकता है. क्या करना चाहिए? किस तरह इन्हें सहयोग-सहकार दिया जाये? प्रकाश का प्रबंध कैसे हो? उसने अब तक किसी भी स्थिति पर इस तरह गहन विचार नहीं किया था. संयोगवश उसे एक कहानी याद आयी. पूस की हाड़ गलाती रात में एक व्यक्ति उघड़े बदन नदी के ठंडे गलते पानी में रात भर खड़ा रहा. महल की किसी खिड़की में एक दीपक जल रहा था. वह व्यक्ति रात भर उसकी लौ को देखता रहा.

शायद उस क्षीण प्रकाश से शक्ति, साहस और सहारा पा रहा होगा. यदि वह खिड़की से थोड़ा-सा प्रकाश लोली व छोटन तक पहुंचा दे, प्रकाश से डरकर सांप नहीं आयेगा. पर पापा अचानक कमरे में आ सकते हैं कि लाइट क्यों जला रखी है. एकाएक ख़्याल आया उसके बिस्तर में टॉर्च रखी रहती है. उसने खिड़की खोली. लोली को पुकारा— ''लोली.''

''हां भैया.''

''ये टॉर्च लो.''

''नहीं भैया. आपके पापा नाराज़ होंगे.''

''लो. सुबह लौटा देना. रात भर जलाये रहना. अच्छा. सांप नहीं आयेगा.''

''ठीक है भैया.''

स्वस्तिक का लोली व छोटन से कोई कमिटमेंट नहीं है, भलमनसाहत, सहृदयता, सामर्थ्य वह नहीं समझता, उसे सामाजिक-आर्थिक यश-लाभ की कामना भी नहीं. अभी वह महीन भावों को भांपना नहीं सीख पाया है. वह अपनी बाल-सुलभ सरलता में प्राणीमात्र को सुखी, प्रसन्न, निडर देखना चाहता है. उसकी यह सरलता उम्र भर क़ायम रह पाये तो यह संसार बहुत सुंदर हो.

अपने स्तर पर प्रकाश का प्रबंध कर स्वस्तिक रजाई में घुस गया. खिड़की के पार ठंडी-ठिठुरती रात का सन्नाटा पसरा है.

***द्वारा श्री एम. के. मिश्र,***
***जीवन विहार अपार्टमेंट, द्वितीय तल,***
***फ़्लैट नं. ७, महेश्वरी स्वीट्स के पीछे,***
***रीवा रोड, सतना (म. प्र.)-४८५००१.***
***मो. : ७८९८२४५५४९.***

# इंडियन क़ाफ्का

सुशांत सुप्रिय

मैं हूं, कमरा है, दीवारें हैं, छत है, सीलन है, घुटन है, सन्नाटा है और मेरा अंतहीन अकेलापन है. हां, अकेलापन, जो अक़सर मुझे कटहे कुत्ते-सा काटने को दौड़ता है. पर जो मेरे अस्तित्व को स्वीकार तो करता है, जो अब मेरा एकमात्र शत्रु-मित्र है.

ख़ुद में बंद, मैं खुली खिड़की के पास जा खड़ा होता हूं. अपनी अस्थिरता का अकेला साक्षी. बाहर एड्स के रोगी-सी मुरझाई शाम मरने-मरने को हो आयी है. हवा चुप है. सामने पार्क में खड़े ऐंठे पेड़ चुप हैं. वहीं बेंच पर बैठे रोज़ बहस करने वाले दो सठियाए ख़बीस बूढ़े चुप हैं. बेंच के नीचे पड़ा प्रतिदिन अपनी ही दुम से झगड़ने वाला आवारा कुत्ता चुप है. एक मरघटी उदासी आसमान से चू-चू कर चुपचाप सड़क की छाती पर बिछती जा रही है. और सड़क चुप्पी की केंचुली उतार फेंकने के लिए कसमसा रही है.

साथ वाले आंगन से उड़ कर मिस लिली की छटपटाती हंसी स्तब्ध फ़िज़ा में फ्रीज़ हो जाती है. तभी नशे में धुत्त एक अजनबी स्वर भेड़िए-सा गुर्राता है. मिस लिली की हंसी अब पिघलने लगती है.

मुझे अचानक लगता है जैसे मैं ऊब कर ढेर-सी उल्टी कर दूंगा. पर वैसा कुछ नहीं होता. खिड़की से नाता तोड़ कर मैं चारपाई से रिश्ता गांठ लेता हूं. चाहता हूं, कुछ गुनगुनाऊं. पर कोई 'नर्सरी-राइम' भी याद नहीं आती. अनायास ही मेरी उंगलियां मेरी पुरानी कलाई-घड़ी में चाबी देना चाहती हैं, पर वह पहले से ही फ़ुल है. हाथ दो हफ़्ते लंबी दाढ़ी खुजलाने लगते हैं. दाढ़ी कड़ी है. चुभती है. जेब से सिगरेट-पैकेट निकालता हूं. लाइटर भी. सुलगाता हूं. सुलगता हूं. सिगरेट मुझे कश-कश पीने लगती है. मैं सिगरेट को पल-पल जीने लगता हूं. भीतर कहीं कुछ जलने लगता है. राहत मिलती है. क्षणिक ही सही. कल गुप्ता को नयी स्टोरी देनी है. नया फ़ीचर लिखना है अख़बार के लिए, पर कुछ नहीं सूझता है. विचारों के उलझे धागे में अनगिनत गांठें पड़ी हैं. झुटपुटे में पल सुलगते हैं और दम तोड़ते जाते हैं. और सिगरेट के राख़-सी तुम्हारी याद झरने लगती है...

ओ नेहा, तुम कहां हो?

'यार, क्या ऑर्ट-मूवी के पिटे हीरो-सी शक्ल बना रखी है! शेव क्यों नहीं करते?'

मैं और नेहा एन. एम. पैलेस में लगी फ़िल्म 'क़यामत से क़यामत तक' देख कर निकले थे. सर्द शाम थी. यूनिवर्सिटी गेट पर थ्री-व्हीलर से उतर कर हम गर्ल्स-हॉस्टल की ओर बढ़ रहे थे. मूवी के बारे में बातें हो रही थीं. तभी नेहा ने कहा था, 'कल मिस्टर मजनू यानी तुम अपनी दाढ़ी शेव करके आओगे, समझे?'

'जानती हो, दाढ़ी में आदमी इंटेलेक्चुअल लगता है.'

'दाढ़ी में आदमी बंदर लगता है. डार्विन का बंदर...'

सिगरेट का बचा हुआ हिस्सा उंगलियों को जलाने लगता है. मेज़ पर पड़ी कई दिन पुरानी जूठी तश्तरी को ऐश-ट्रे बना उसे बुझा देता हूं. एक और सींझी हुई रात मुझे आ दबोचेगी. इस अहसास से बचने की एक अधमरी कोशिश करता हूं. ट्रांज़िस्टर का स्विच ऑन कर देता हूं.

'यह आकाशवाणी है. अब आप क्लेयर नाथ से समाचार सुनिए...'

खीझ कर बंद कर देता हूं ट्रांज़िस्टर. हुंह! समाचार! रक्तचाप और बढ़ जायेगा समाचार सुनने से. वही वाहियात ख़बरें. सोचता हूं... हर सुबह अनाप-शनाप ख़बरों से भरे

अख़बार कैसे धड़ाधड़ बिक जाते हैं. नेहा को भी अख़बार से चिढ़ थी.

'... फिर? क्या सोचा है? आगे क्या करोगे?' हम दोनों 'बॉटैनिकल गार्डन' में टहल रहे थे. मैंने उसके बालों में एक सफ़ेद गुलाब लगा दिया था और उस पर झुकते हुए उसे चूम लिया था. पर वह आशंकित लगी थी.

'क्या बात है, नेहा?'

और तब उसने पूछा था... 'फिर? क्या सोचा है? आगे क्या करोगे?' मैं कुछ देर चुप रहा था. समय धड़धड़ा कर आगे बढ़ रहा था. फिर मैंने कहा था, 'सोचता हूं, कोई अख़बार ज्वाएन कर लूं.'

'अख़बार?' उसका चेहरा अजनबी हो आया था. उसके चेहरे पर कई भाव आये-गये थे. हवा में उसके अनकहे शब्दों की गूंज थी. उसने ज़ोर देकर कहा था, 'क्या आर्ट मूवी के पिटे हीरो जैसी बातें कर रहे हो. किसी प्रतियोगिता-परीक्षा में क्यों नहीं बैठते?'

हवा शांत-विरोध से बजने लगी थी...

विचारों का मकड़-जाल मुझे ऑक्टोपस-सा जकड़ने लगता है. झटक देता हूं उन्हें. पर नहीं झटक पाता हूं अपनी बेबसी और लाचारी को. और अपने अंतहीन अकेलेपन को.

कल अनूप सलाह दे रहा था, 'कोई कुत्ता क्यों नहीं पाल लेते आप? दिल लगा रहेगा.'

मैंने फीकी मुस्कान दी थी.

'और इंसान की तरह धोखा भी नहीं देगा.' अनूप मेरी खोयी हुई ज़िंदगी के बारे में जानता था.

ऊब कर एक और सिगरेट सुलगा लेता हूं. बौराए समय से बचने के लिए कमरे में निग़ाह दौड़ाता हूं. शाम के झुटपुटे में एक पूंछ-कटी छिपकली दीवार को नापने की तमन्ना लिये इधर से उधर भाग रही है. नादान. ख़ुद ही थक-हार कर दुबक जायेगी किसी कोने में.

एक लंबा कश लेता हूं. और धुएं को भीतर तक बंद रहने देता हूं. मज़ा आता है, कहीं भीतर तक ख़ुद को झुलसा लेने में. खांसी का एक दौरा पड़ता है. तकलीफ़देह. पर सिगरेट मुझे पीती रहती है. और मैं उसे जीता रहता हूं. अच्छा भाईचारा है मेरा और सिगरेट का कमबख़्त. सीने में सुइयां-सी चुभती हैं और दर्द यह अहसास दिला जाता है कि मैं अभी ज़िंदा हूं. अभिशप्त हूं जीने के लिए इसकी-उसकी शर्तों पर. अचानक मुझे याद आता है कि मैं पिछले कुछ वर्षों से खुल कर हंसा नहीं हूं. पर ख़ुद से क्षमा-याचना भी नहीं कर पाता हूं मैं.

**जन्म : २८ मार्च १९६८**

**: कृतियां :**

**हत्यारे (२०१०), हे राम (२०१३), दलदल (२०१५), गौरतलब कहानियां (२०१७), पिता के नाम (२०१७), पांच कथा-संग्रह; इस रूट की सभी लाइनें व्यस्त हैं (२०१५), अयोध्या से गुजरात तक (२०१७); दो काव्य संग्रह; विश्व की चर्चित कहानियां (२०१७), विश्व की श्रेष्ठ कहानियां (२०१७); दो अनूदित कथा-संग्रह.**

**: सम्मान :**

**भाषा विभाग (पंजाब) तथा प्रकाशन विभाग (भारत सरकार) द्वारा रचनाएं पुरस्कृत. कमलेश्वर-स्मृति (कथाबिंब) कहानी प्रतियोगिता (मुंबई) में लगातार दो वर्ष प्रथम पुरस्कार. स्टोरी-मिरर.कॉम कथा प्रतियोगिता, २०१६ में कहानी पुरस्कृत.**

**: अन्य :**

**कई कहानियां व कविताएं अंग्रेज़ी, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, उड़िया, मराठी, असमिया, कन्नड़, तेलुगु व मलयालम आदि भाषाओं में अनूदित व प्रकाशित. कहानियां केरल के कलडी वि. वि. (कोच्चि) के एम. ए. (हिंदी), तथा मध्यप्रदेश, हरियाणा व महाराष्ट्र के कक्षा सात व नौ के हिंदी पाठ्यक्रम में शामिल. कविताएं पुणे वि. वि. के बी. ए. (द्वितीय वर्ष) के पाठ्य-क्रम में शामिल. कहानियों पर आगरा वि. वि., कुरुक्षेत्र वि. वि., पटियाला वि. वि., व गुरु नानक देव वि. वि., अमृतसर आदि के हिंदी विभागों में शोधार्थियों द्वारा शोध-कार्य; आकाशवाणी, दिल्ली से कई बार कविता व कहानी-पाठ प्रसारित. लोकसभा टी. वी. के 'साहित्य संसार' कार्यक्रम में जीवन व लेखन संबंधी इंटरव्यू प्रसारित; अंग्रेज़ी व पंजाबी में भी लेखन व प्रकाशन. अंग्रेज़ी में काव्य-संग्रह 'इन गांधीज़ कंट्री' प्रकाशित. अंग्रेज़ी कथा-संग्रह 'द फ़िफ़्थ डायरेक्शन' प्रकाशनाधीन.**

एक मुरझाई मुस्कान चेहरे पर आ कर सट जाती है. चेहरे की स्लेट से उसे पोंछ कर मैं खिड़की से बाहर झांकता हूं. एक और सिमसिमी शाम ढल चुकी है. रोशनी एक अंतिम कराह के साथ बुझ चुकी है. एक और पसीजी रात मटमैले आसमान की छत से उतर कर मेरे सलेटी कमरे में घुसपैठ कर चुकी है. उसी कमरे में जहां मैं हूं, दीवारें हैं, छत है, सीलन है, घुटन है, सन्नाटा है और मेरा अंतहीन अकेलापन है. हां, अकेलापन. मेरा एकमात्र शत्रु-मित्र.

झुके हुए झंडे-से उदास पल मुझे घेर लेते हैं. दूसरी सिगरेट भी साथ छोड़ जाना चाहती है. कल गुप्ता को अख़बार के लिए कौन-सा फ़ीचर दूंगा, पता नहीं. कुछ सूझ ही नहीं रहा. भीतर केवल एक मुर्दा हलचल भरी है. लगता है, यह नौकरी भी छूट जायेगी.

बाहर एक अभागी टिटहरी ज़ोर-ज़ोर से चीख़ कर सन्नाटे का ट्यूमर फोड़ देती है. शोर का मवाद रिसने लगता है. दूर किसी मुंहझौंसे कारख़ाने का भोंपू उदास सिम्फ़नी-सा बज उठता है. पड़ोस में मिस लिली का दरवाज़ा फ़टाक से बंद होने की आवाज़ कुछ देर स्तब्ध फ़िज़ा में जमी रहती है. फिर एक शराबी स्वर रुखाई से सीढ़ियों को कुचल कर अंधेरे में गुम हो जाता है. पार्क में पड़ा आवारा कुत्ता ऊंचे स्वर में रो उठता है. मिस लिली के यहां से पियानो की मातमी धुन रह-रह कर गूंज जाती है.

भीतर-बाहर के माहौल की मनहूसियत के विरोध में मैं हवा को एक अशक्त ठोकर मारता हूं. और खिड़की से बाहर सिगरेट का ठूंठ फेंक कर वापस चारपाई पर आ बैठता हूं. किसी पर-कटी गोरैया-सा लुटा महसूस करता हूं. पता नहीं क्यों, नेहा, आज तुम बहुत याद आ रही हो...

'आई. ए. एस. का फ़ॉर्म क्यों नहीं भरते?' कैंटीन में कॉफ़ी सिप करते हुए तुमने तीसरी बार पूछा था.

'नेहा, आई. ए. एस. मेरे लिए नहीं है.' आख़िर मुझे कहना पड़ा था. और तब तुमने कहा था, 'पिताजी मेरे लिए आई. ए. एस. लड़का ढूंढ़ रहे हैं...'

बाहर पाशविक अंधेरा तेज़ी से झरने लगता है. फ़्यूज़ बल्ब-सा मैं चारपाई पर बुझा पड़ा रहता हूं. आज ढाबे में जा कर खाने का मन नहीं है.

अनमने भाव से एक और सिगरेट सुलगा लेता हूं. सोचता हूं, चारपाई से उठ कर बिजली का लट्टू जला लूं. फिर मन में आता है, कमरे में उजाला हो जाने से भी क्या फ़र्क पड़ेगा. मेरे भीतर उगे नासूरों के जंगल में फैला काले फ़ौलाद-सा घुप्प अंधेरा तो फिर भी वैसे ही जमा रहेगा. न जाने कब तक.

सिगरेट पीते-पीते गला सूखने लगता है. फिर भी लेता जाता हूं. कश पर कश... कश पर कश. गोया ख़ुद से बदला लेने की क़सम खा रखी हो.

ओ नेहा, मेरी आत्मा के चेहरे पर अपनी स्मृतियों की खरोंच के अमिट निशान छोड़ कर तुम कहां चली गयीं?

... बहुत पहले कभी एक आर्ट मूवी देखी थी. फ़िल्म की नायिका बचपन में लगे किसी सदमे की वजह से पागल हो जाती है. अमीर मां-बाप बच्ची को गांव में दादी के पास छोड़ जाते हैं. फिर बच्ची जवान हो जाती है. और ख़ूबसूरत भी. और नायक पहली मुलाक़ात में ही उससे प्यार करने लगता है. और एक दिन नायक अपने सच्चे प्रेम के बूते पर नायिका को ठीक कर देता है. और मानसिक रूप से स्वस्थ हो चुकी नायिका अपने पागलपन के दिनों को भूल जाती है. और नायक अब उसके लिए एक अजनबी बन जाता है. फिर नायिका अपने माता-पिता के पास लौट जाती है. पर नायक इस सत्य को स्वीकार नहीं कर पाता है. और इस सदमे से वह पागल हो जाता है ...

गला कुछ ज़्यादा ही सूखने लगता है. सिगरेट बुझा देता हूं. रोना चाहता हूं. शायद सदियों से रोया नहीं हूं. पर आंखों में आंसू का समुद्र बहुत पहले सूख चुका है. भीतर के खंडहर में रिक्तता की आंधी सांय-सांय करने लगती है. तनहा मैं तड़प उठता हूं.

मन कड़ा करके उठ बैठता हूं. फिर लाइट जलाता हूं. आंखें कुछ चौंधिया-सी जाती हैं. एक भटका हुआ चमगादड़ कमरे में घुस आया है. और बाहर निकलने के विफल प्रयत्न में बार-बार दीवारों से टकरा कर सिर धुन रहा है. किसी तरह उसे खुली खिड़की के रास्ते बाहर निकाल कर खिड़की बंद कर देता हूं.

मेज़ पर एक लंबे अंतराल के बाद घर से आया पत्र पड़ा है. उठा कर एक बार फिर पढ़ डालता हूं. पिता की तबीयत ठीक नहीं है. मां का गठिया वैसा ही है. सुमी के हाथ पीले करने की चिंता पिता को घुन-सी खाये जा रही है. पिछले तीन महीनों से पिता को पेंशन नहीं मिली है. लिखा है. ऐसा लड़का किस काम का जो घर वालों को सहारा न दे सके...

लघुकथा

# अहसास

✍ अशोक वाधवाणी

आलोक की प्रतीक्षा में मां दरवाज़े के बाहर बेचैन बैठी थी. रात का एक बज चुका था. पास-पड़ोस के लोग गहरी नींद में लीन हो चुके थे. सिर्फ़ एक मां ही थी, जिसकी आंखों से नींद कोसों दूर थी. मां के हलक से खाने का एक निवाला तो दूर, पानी की दो बूंदें तक नहीं जा रही थीं.

रह-रहकर मां के मन में नकारात्मक विचार पनपने लगे. आलोक का मोबाइल बंद था, इसलिए मां परेशान, व्याकुल हो चुकी थी. सोचने लगी, 'कहीं आलोक को कुछ हुआ तो नहीं?' फिर अगले ही पल ख़ुद को समझाने लगी, 'मेरा आशीर्वाद हमेशा उसके साथ रहता है. मेरे बेटे को खरोंच तक नहीं आयी होगी.'

इतने में कुत्तों के भौंकने से उसकी तंद्रा टूटी. दूर से आनेवाली परछाई को पहचान कर मां की आंखें चमकीं. दौड़कर उसे गले लगाते कहा, 'बेटे, अगर और थोड़ी देर तक नहीं आते तो शायद मेरा मरा हुआ मुंह देखते.' ख़ुशी से छलकते आंसुओं को रोकते मां ने बेटे आलोक से कहा.

आलोक मां को घर के अंदर ले गया. अपने हाथों से पानी पिलाने के बाद ग़ुस्से से मां से कहा, 'मां आपको कितनी बार समझाया है कि मेरा इंतज़ार मत किया करो. मैं कोई छोटा बच्चा नहीं हूं. खा-पीकर सो जाया करो, जिस तरह पिताजी और तुम्हारी बहू सोती है. दरअसल, रास्ते में बस ख़राब हो गयी. देरीवाली बात बताना तो चाहता था, लेकिन मोबाइल की चार्ज़िंग ख़त्म हो चुकी थी.' आलोक ने मां को स्पष्टीकरण देते हुए कहा.

'बेटे किसी और से भी तो मोबाइल लेकर सिर्फ़ यही देरीवाली बात बता सकते थे.' आलोक निरुत्तर हुआ. सूझ नहीं रहा था कि क्या कहे.

मां ने अपनी बात ज़ारी रखते हुए कहा, 'मां-बाप अपने बच्चों के लिए बेचैन चिंतातुर क्यों होते हैं इसका अनुभव तुम्हें, ख़ुद बच्चे का बाप बनने पर ही होगा.' मां की बात सुनकर आलोक के चेहरे पर मुस्कुराहट फैल गयी. आंखों में मां के लिए आदरभाव दिख रहा था.

ओम इमिटेशन ज्वैलरी, निकट श्री झूलेलाल मार्केट,
पो. गांधी नगर- ४१६११९.
जि. कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
ई-मेल :ashok.wadhwani57@gmail.com

आंखें मूंद कर एक लंबी सांस लेता हूं और बंद कर देता हूं घर से आयी चिट्ठी. सारी दिशाएं ग़लत लगने लगती हैं. बाहर कोई बौराया मुर्ग़ा असमय बांग दे रहा है. कल गुप्ता को अख़बार के लिए क्या फ़ीचर दूंगा, कुछ नहीं सूझता. अब तो यह नौकरी भी छूट जायेगी. दिल में आता है, अंधेरे से ख़ूब बातें करूं. उसे अपना दुखड़ा सुनाऊं. किसी ऊंचे पहाड़ की चोटी से ख़ुद को धक्का दे दूं. लगता है जैसे भरी दुपहरी में मेरे सूर्य को ग्रहण लग गया है. जैसे मेरे जीवन की पतीली में रखा दूध फट गया है. जैसे मेरी पूरी ज़िंदगी बेहद अधूरी-सी है. जैसे मैं एक मिसफ़िट बन कर रह गया हूं. ठहरे हुए पानी पर जमी काई बन कर रह गया हूं. इंसान नहीं, कोई अदना-सा कीड़ा बन कर रह गया हूं...

A-ए- ५००१,
गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड,
इंदिरापुरम, गाजियाबाद (उ. प्र.) - २०१०१४
मो : ८५१२०७००८६
ई-मेल : sushant1968@gmail.com

# अहसान फ़रामोश

सिद्धेश

लीलावती बिस्तर से लाठी के सहारे उठी और एक किनारे लगी अलमारी के निकट आकर रुक गयी. कल ही अपने भतीजे को कहकर बैंक से पचास हज़ार रुपये निकलवाये थे. सोच रही थी कि संस्था को कहे वायदे के अनुसार तीस हज़ार रुपये दान में दे या नहीं. उसके स्कूल के पुराने टीचरों ने दस-दस हज़ार रुपये दे दिये थे.

लीलावती इस संस्था से वर्षों से जुड़ी थी. सभी उसे नेक नज़र से देखते थे. वह घर में अकेली थी. पति को गुज़रे कई साल हो गये. बच्चे थे नहीं. अगाध पैसे की मालकिन बन बैठी थी. स्कूल के अन्यान्य टीचरों में वह सबसे बड़ी उम्र की थी.

सेवानिवृत्त हुए चौदह साल हो गये. शीला, प्रमीला, नीना उससे छोटी ही होंगी. मगर सबके साथ हम उम्र जैसा व्यवहार करती थी. अत: सबकी वह प्रिय सहेली की तरह थी.

संस्था की देखरेख वह अभिभावक की तरह करती थी. यहां तक कि उसकी सेक्रेटरी संस्था के हर कामों में उससे सलाह-मशविरा लेती. संस्था ने ही स्कूल के जब्त किये हुए बकाया पैसों के लिए अन्य टीचरों के साथ क़ानून का सहारा लिया था, तब भरपूर सहायता की थी. छह साल की क़ानूनी लड़ाई के बाद जब उसे जीत हासिल हुई, उसने सोचा था मिले पैसों में से एक मोटी रक़म संस्था के हित के लिए देगी. उसके अलावा जो और भी दस टीचरें थीं उनमें अधिकांश ने पहले ही अपने हक़ से हटकर स्कूल के सामने तयशुदा पैसों को ले लिया था. वे इस क़ानूनी लड़ाई में शरीक़ नहीं थीं. केवल चारों ही ने अंतिम समय तक एक-दूसरे का साथ दिया था.

इसीलिए जब भी मौक़ा मिला, लीलावती ने उन टीचरों को जिन्होंने साथ नहीं दिया, मीरजाफ़र, लोभी और दगाबाज़ कहकर संबोधित किया. इसके जवाब में वीणा ने कहा था, 'मैं मज़बूर थी.'

'काहे की मज़बूरी? घर का चूल्हा नहीं जलता कि भूखों मरने की नौबत आ जाती?'

मीता ने कहा था, 'कौन बार-बार कचहरी का चक्कर लगाये. पैसे भी तो ख़र्च होते हैं.'

लीलावती ने अपनी बात दोहराते हुए कहा, 'इसीलिए कहती हूं, तुम सब दगाबाज़ निकलीं. मीरजाफ़र का दल हो तुम सब.'

'ऐसा मत कहो लीला दी, हम सब तुम्हारे चाहने वाले हैं. आपके जैसा धैर्य हम सब में नहीं है.'

मगर लीलावती को जब कभी, जहां कहीं भी मौक़ा मिलता इन्हें मीरजाफ़र कहकर संबोधन देना नहीं भूलती.

समय गुज़रता गया. छह साल बीत गये. अंत में क़ानून ने इनके पक्ष में फ़ैसला सुना दिया. चारों को यानी लीलावती, शीला, प्रमीला और नीना को कहे अनुसार पैसा मिला.

संस्था की सेक्रेटरी ने इसकी ख़ुशी में जश्न मनाने की घोषणा कर दी. सबने हां में हां मिलायी. लीलावती ने आगे बढ़कर कहा, 'मैं खाने-पीने का ख़र्चा उठाऊंगी. इसके अलावा संस्था को एकमुश्त राशि दूंगी.'

शीला ने कहा, 'मैं भी दूंगी. जितना संभव होगा.'

नीना, प्रमीला ने भी दस-दस हज़ार देने का वायदा किया.

लीलावती कहां चुप बैठने वाली थी कहा, 'मैं तीस दूंगी.' सबके चेहरे पर ख़ुशहाली थी. मगर वीणा थी कि अलग बैठी सोच रही थी, भाग्य ने उसके साथ परिहास

किया.

□

लीलावती अकेली कमरे में बैठी थी. वह अब सीधे चल फिर नहीं सकती. पैर में सूजन, कमर में दर्द, रात में कभी-कभी सांस लेने में भी दिक्कत होती थी. प्राइवेट डॉक्टर उसका इलाज़ कर रहे थे.

एक बार अंधेरे में ठोकर खाकर गिरते-गिरते बची. एक ही कमरे में अपनी दुनिया बटोर रखी थी. आसपास कोई नहीं था. पड़ोस में रहने वाली पति के रिश्तेदार की देवरानी भी उसकी संपत्ति पर नज़र रखे थी. लीला ने कहीं नहीं जा पाने के कारण दूर मोहल्ले में रहनेवाले भतीजे को बैंक का सारा दायित्व दे रखा था. लीला को संस्था में ले जाने के लिए एक गाड़ी तय थी. ड्राइवर ठीक समय पर हाज़िर हो जाता. वही उसे सम्हालकर संस्था की सीढ़ी तक पहुंचा आता था. ख़ुश होकर भाड़े से अधिक देकर अपने भाईचारे को क़ायम रखती. लौटते समय कोई न कोई साथ रहता अत: आने-जाने की दिक्कत नहीं थी. उसने एक ख़ूबसूरत हाथ–लाठी का सहारा ले लिया था तभी अपने मकान की सीढ़ियां चढ़ पाती थी.

उस दिन अपने वादे के अनुसार संस्था को देने के लिए पैसे निकालना चाहा था, तो भतीजे ने कहा था, 'इतना पैसे क्यों देना चाहती हो?'

'मेरी मर्ज़ी. मेरे लिए पचास हज़ार निकाल दे.'

'अरे बाप रे, इतना?'

'नहीं, इसमें से कुछ बचाकर रखूंगी.'

'किसके लिए?'

'तेरे लिए.'

'कितना?'

'मेरे मरने के बाद तो सब तेरा ही होगा रे.' भतीजे ने जो सोचा था. वही हुआ.

□

रात के अंधेरे में सोयी हुई लीलावती को नींद नहीं आ रही थी. उसकी नज़र बार-बार अलमारी की तरफ़ चली जाती. उसके अंदर पचास हज़ार के अलावा संस्था के काग़ज़-पत्तर भी थे.

कुछ सदस्यों से प्राप्त शुल्क के पैसे भी रखे हैं. लीलावती अब चलने फिरने में लाचार है. कई बार चाहा था कि सब हिसाब पत्तर संस्था की सेक्रेटरी को सौंप दे दान के

१७ अगस्त १९३८;
एम. ए. (हिंदी), कलकत्ता वि. वि. (१९६१)
सन १९६० से विभिन्न पत्रिकाओं में निरंतर लेखन.

***: प्रकाशन :***

पुस्तकें : १३ कहानी संग्रह, केंचुल, जिंदगी सफ़रनामा (लघु उपन्यास), अपने ही चेहरे (कविता संग्रह).

***: अन्य :***

इनके अलावा बांग्ला से चार उपन्यास, एक कविता तथा एक कहानी संग्रह (सुनील गंगोपाध्याय) का हिंदी अनुवाद. 'भारतीय भाषाएं' (२४) एवं 'हिंदी कहानियों' का बांग्ला में संपादन.

***: संप्रति :***

स्वंतत्र लेखन.

तीस हज़ार रुपये भी थे. कई बार कहने के बाद भी इनसे पीछा नहीं छुड़ा पायी.

सेक्रेटरी लावणी ने कहा था, 'आप पर हम सबको भरोसा है. रहने दीजिए अपने पास. जब ज़रूरत पड़ेगी तब मांग लूंगी.'

'ज़िंदगी का क्या भरोसा है. कब तक रहूं, क्या पता शीला को देकर छुट्टी करो.' लीला ने कहा.

'ठीक है. पहले क़ानून ने जो हम सबों को बख़्शा है, उसका आनंद मना लें. आप अपनी तरफ़ से जो संस्था को देना चाहती हैं, वह दे दीजिए.'

'यानी तीस हज़ार न!'

'हां.' लावणी ने स्वीकार में सिरा हिलाया.

लीलावती अंधेरे में ही बिस्तर से उठी और आलमारी के निकट खड़ी हो गयी. बाहर लैंप पोस्ट की रोशनी का एक कतरा अंदर कमरे में पड़ रहा था. उसने आलमारी के

लॉकर को अंदाज़ से खोला. छूकर पोटली में बंधे रुपयों को छुआ, फिर यत्न से रखकर बिस्तर तक लौट आयी.

सोचा जब तक ज़िंदा है, यह सब उसके क़ब्ज़े में है. आंखें मूंदने पर तो भतीजों और उनकी बहुओं का हो जायेगा. कौन जानने आयेगा कि आलमारी में कितना कुछ था.

□

अलमारी से बिस्तर तक आते-आते सिर में चक्कर आने की वजह से लीलावती गिरते-गिरते बची. दूसरे दिन डॉक्टर की सलाह पर वह एक नर्सिंग होम में भर्ती हो गयी थी. यहीं इसी होम में पहले भी दस दिनों तक भर्ती थी. दिल के एक कोने में यानी हार्ट अटैक से बचने के लिए 'पेसमेकर' लगाया गया था. सांस लेने में दिक्कत हो रही थी. डॉक्टर-नर्स सभी परिचित थे.

लीलावती आंखें मूंदे बिस्तर पर पड़ी थी. नाक में नली लगी थी. ऑक्सीज़न लेने की व्यवस्था कर नर्स डीसूज़ा और डॉक्टर सुरजीत आसपास ही चक्कर लगा रहे थे. लीलावती के दोनों भतीजों, उनकी बहुएं भी आयी हुई थीं. संस्था के कई सदस्यों के अलावा शीला, प्रमीला और नीना मौज़ूद थीं. शीला ने प्रमीला से कहा था, लगता नहीं कि इस बार लीला घर वापस आ पायेगी.' इन सबों से हटकर एक भतीजा शैलेश जिसे लीलावती का वरदहस्त प्राप्त था और लीला का संपत्ति की देखरेख करता था, वह डॉक्टर के आगे-पीछे डोल रहा था.

'क्या उम्मीद है डॉक्टर?' उसने पूछा.

'कह नहीं सकता, बच भी सकती हैं. लेकिन इनका अब बचा रहना कोई...'

'तो क्या फ़ायदा है. ऐसे बचे रहने से. इनके लंबे इलाज़ में ढेर सारे पैसे लगेंगे. ख़ुद भी ऐसी अवस्था में पंगु की तरह जीने से बेहतर है कि...'

डॉक्टर ने हंसकर बात टाल दी. बहुएं अलग से परेशान थीं. आपस में बातें कर रही थीं.

भगवती आंखें पोछते हुए बोली, 'मां अकेली हैं, कौन देखभाल करेगा?'

'सो तो है. ज़िंदा रह भी गयीं तो इतने बड़े घर में कैसे समय गुज़ारेंगी. गू-मूत करना. रात में चलकर, बाथरूम जाना. भोजन नहीं होगा तो किसी रसोइया को रख लेंगी. लेकिन...' सुषमा बोली.

'हां. आजकल तो वह भी चाहने पर नहीं मिलती. पैसों का सत्यानाश है.'

'हम लोगों का उनके निकट रहना संभव नहीं है. अपना घर-परिवार भी तो है. लड़के-बच्चे हैं.'

'मां क्या यह सब नहीं सोचती हैं? मगर क्या करें, मरना अपने हाथ में थोड़े ही है.'

लीलावती इन सब लोगों की उपस्थिति से अनजान बिस्तर पर पड़ी थी. नर्सिंग होम से विज़िटिंग ऑवर ख़त्म हो रहा था. सभी लौटने की तैयारी में थे कि शीला और प्रमीला कमरे के अंदर जाकर लीला की हालत देखने के लिए झुकीं कि देखा, उसके नाक से लगी नली खुली पड़ी है. डॉक्टर आस-पास नहीं हैं. नर्स डिसूज़ा से पूछा, 'ऑक्सीज़न की नली खुली पड़ी है. किसने खोली.'

लीलावती मुंह बाये पड़ी थी. निस्तेज़ आंखें छत की तरफ़ लगी हैं. सांस धीमी-धीमी चल रही थी. हाथ-पांव ठंडे पड़ गये थे या जकड़ गये थे.

बाहर भतीजे और उनकी बहुएं आपस में बातचीत करने में मशगूल थे.

□

दूसरे दिन लीलावती की अंत्येष्टि क्रिया के बाद शैलेश व भतीजे और बहुओं ने पहला काम किया कि लीला के कमरे में आकर आलमारी से सारे सामान हटा लिये. बहुओं ने मिलकर दामी साड़ियां, गहनों को आपस में बांट लिया. खाली आलमारी भी कमरे से खींचकर बाहर की और उसे अपने घर ले गये. आलमारी खोलते समय एक पोटली में बंधे रुपयों और संस्था के काग़ज़ पत्रों पर नज़र पड़ी थी. लेकिन उसे लौटाया नहीं, बल्कि उन्हें भी अपनी संपत्ति मानकर कब्ज़े में ले लिया. पूछने पर बता देंगे कि आलमारी में ऐसा कुछ नहीं मिला था.

□

संस्था की तरफ़ से लीलावती के निधन पर श्रद्धांजलि देने के लिए शोक सभा बुलायी गयी, जिसमें शिक्षा जगत के नामी–गिरामी लोगों के साथ-साथ विभिन्न स्कूलों के टीचर्स भी आये थे. मगर भतीजे नहीं आये और न उनकी बहुएं.

शीला ने कहा, 'यह जानबूझकर साजिश रची गयी थी. संस्था के प्रति लीलावती जी का अवदान सचमुच अप्रतिम था. वह शुरू से ही उसके साथ जुड़ी थीं. फिर क्या कारण था कि अंतिम समय तक अपने वादे को क़ायम नहीं

रखा. अगर चाहतीं तो भतीजे को हम सबों के सामने संस्था के काग़ज़-पत्रों के अलावा दान के पैसों को लौटाने की बात कह जातीं. माना कि वे अचानक बीमार पड़ीं और आख़िरी सांस लेने तक बेहोश रहीं.

नीना ने कहा, 'उनकी सांस तो छीन ली गयी. क्या पता किसकी साजिश से ऑक्सीज़न की नली हटा ली गयी थी.'

वीणा उठकर खड़ी हो गयी. उसने बोलना चाहा तो कई लोगों के चेहरे पर शिकन पड़ गयी. वह बोली, 'नहीं, लगता है, वह ख़ुद भी संस्था के प्रति वफ़ादार नहीं थीं. हम चौदह टीचर थीं, जिनमें दसों ने अपनी-अपनी मज़बूरी की वजह से स्कूल की तयशुदा देय राशियों को मानकर स्वीकार कर लिया था. छह सालों की लंबी क़ानूनी लड़ाई में इनका साथ नहीं दिया. इनके पास अगाध धनराशि है, इसलिए इनमें वह धैर्य भी था. घर में अकेली होने के कारण भी पारिवारिक समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ा. फिर भी वह हम सबों के ऊपर छत्रछाया की तरह थीं.

नीना ने प्रतिवाद में कहा, 'किसी भी संस्था के लिए लीलावती एक आदर्श महिला थीं. वीणाजी ने जो कहा कि वे वफ़ादार नहीं थीं, मैं नहीं मानती. संस्था का हमेशा साथ देती रहीं. अंतिम समय तक अपनी बढ़ती उम्र और कमज़ोरियों की परवाह नहीं की. सबके साथ उनका संपर्क मधुर था. संस्था की किसी समस्या के समाधान के लिए आगे आ जाती थीं. प्रस्तुत रहती थीं.

अंतिम वक्ता के रूप में प्रमीला ने संक्षिप्त वक्तव्य दिया, 'लीलावती हम सबों के लिए प्रणम्य थीं. वह एक अभिभावक भी थीं. उनके न रहने पर संस्था के लिए निर्णायक का अभाव बराबर बना रहेगा. वो सचमुच सहायता के लिए क्या और कितना देना चाह रही थीं, यह सोच का विषय है. बिना किसी को बताये सांस की अंतिम घड़ी तक अपने से लड़ती रहीं. किसने जानबूझकर वह नाटक रचा, यह तो उनके दूर के रिश्ते वाले जानें या नर्स अथवा डॉक्टर. हम सब उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना करें.'

वह अंतिम दृश्य, जब लीलावती की नाक से ऑक्सीज़न की नली हटा दी गयी थी और वह असहाय-सी पड़ी कुछ बुदबुदा रही थीं. क्या वह कुछ कहना चाह रही थी?

*१/१७, आदर्शपल्ली, रिज़ेंट एस्टेट, कोलकाता-७०००९२.*
*मो. : ९८३०८५९६६०.*

**लघुकथा**

# गांव की सुरक्षा

*अंकुश्री*

*मुखिया जी के मनमानी व्यवहार से गांव भर के लोग त्रस्त थे. गांव के औरत-मर्द तो उनके यहां खटा ही करते थे, जवान बहू-बेटियों को भी उनके घर में काम करने पड़ते थे.*

*गांव के नवयुवकों ने तय किया कि अब जवान बहू-बेटियां मुखिया जी के यहां काम करने नहीं जाया करेंगी.*

*नवयुवकों की बात मुखिया जी के कानों तक पहुंचने भर की देर थी. उन्होंने ग़रीबों की बस्ती में आग लगवा दी. ग़रीबों की बस्ती धू-धू कर जल गयी. कोई कुछ नहीं कर सका.*

*दूसरे दिन सुबह-सुबह गांव में पुलिस पहुंच गयी. मुखिया जी ने ही आग लगने की प्राथमिकी थाना में दर्ज करायी थी. प्राथमिकी में उन्होंने यह भी लिखवाया था कि 'नरेशवा गांव में बहुत उथल-पुथल कर रहा है. उसी ने आग लगायी है?' नरेशवा गांव के नवयुवकों का नेता था.*

*गांव की सुरक्षा के लिए मुखिया जी के आदमियों के बयान पर नरेशवा को गिरफ़्तार कर लिया गया.*

*८, प्रेस कॉलोनी, सिदरौल, नामकुम, रांची (झारखंड)-८३४०१०*
*मो. : ८८०९९७२५४९*
*ई-मेल : ankushreehindiwriter@gmail.com*

# तालाब की मछली

ताराचंद मकसाने

"और अब मैं सिविल अस्पताल की डीन डॉ. शिवानी कुमार को मंच पर आमंत्रित करते हुए जिन्हें सामाजिक क्षेत्र में सर्वोत्तम योगदान के लिए इस वर्ष के 'मानव सेवा पुरस्कार' से सम्मानित किया जा रहा है. मैं राज्य के मुख्यमंत्री सुधाकर पाटिल से अनुरोध करूंगा कि वे डॉ. शिवानी कुमार को ट्रॉफ़ी तथा पांच लाख का नक़द पुरस्कार प्रदान कर उन्हें सम्मानित करें.''

संयोजक की इस घोषणा के साथ ही हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा. इस राज्य के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार हेतु डॉ. शिवानी को अपने चयन की सूचना दो दिन पूर्व ही फ़ैक्स द्वारा दी गयी थी. उन्हें इस पुरस्कार हेतु अपने चयन पर बड़ा आश्चर्य हुआ था. वह इस समारोह में अपने पति डॉ. अजीत कुमार तथा अपनी १३ वर्षीय बेटी कार्तिका के साथ आयी थीं. अपने नाम की घोषणा के बाद डॉ. शिवानी धीरे-धीरे मंच की ओर बढ़ने लगीं. उन्होंने मुख्यमंत्री को अपने अस्पताल में पहली बार देखा था तथा आज दूसरी बार उनसे रूबरू हो रही थीं.

डॉ. शिवानी के माथे पर पसीने की हल्की बूंदें उभर आयी थी. वह शांतचित्त से मंच पर पहुंचीं. मुख्यमंत्री ने गुलदस्ते से स्वागत किया और धीमी आवाज में डॉ. शिवानी से कहा, ''मैडम, ज़रूरी नहीं कि राजनीति के तालाब की सारी मछलियां गंदी हों, एकाध मछली अच्छी भी हो सकती है. राजनीति में सभी नेताओं को एक ही थैली के चट्टे-बट्टे समझा जाता है, जो ठीक नहीं है. हमारी बिरादरी में कुछ लोग ईमानदार भी हैं. जब आपने मुझे अस्पताल में आने से मना किया था, तब आपने शायद यह सोचा होगा कि मुझे ग़ुस्सा आ गया होगा. पर ऐसी बात नहीं थी. बल्कि मुझे आपके बर्ताव पर गर्व महसूस हुआ था. हमारे इर्द-गिर्द 'यस सर', 'हां जी' और चापलूसी करनेवाले गुड़ पर मक्खियों की तरह भनभानते रहते हैं, पर मुझे स्पष्टवादी, कर्तव्यनिष्ठ एवं अपने कार्य के प्रति समर्पित भाव रखने वाले लोग काफ़ी पसंद हैं और आज विडंबना यह है कि ऐसे लोगों की संख्या कम हो रही है. मैं तो आपके स्पष्टवादी स्वभाव से काफ़ी प्रसन्न हुआ था. मैंने आपमें कार्य के प्रति निष्ठा, लगन तथा समर्पित भाव देखा है. आपकी इन्हीं ख़ूबियों की बदौलत ही आपको इस पुरस्कार से सम्मानित किया जा रहा है. इस पुरस्कार के लिए मेरी ओर से हार्दिक बधाई स्वीकार करें.'

यह कहते हुए मुख्यमंत्री महोदय ने डॉ. शिवानी को पांच लाख का चेक तथा एक शानदार टॉफ़ी प्रदान की, तभी मंच के समीप खड़े मीडियाकर्मियों के फ़्लैश चमकने लगे और हॉल में एक बार फिर से तालियों की गड़गड़ाहट सुनायी देने लगी.

डॉ. शिवानी की समझ में नहीं आ रहा था कि वह इस वक़्त क्या कहे. वह मंच पर मुख्यमंत्री का अभिवादन स्वीकार करते हुए केवल एक ही शब्द बोल पायी — 'धन्यवाद.'

डॉ. शिवानी अपना पुरस्कार लेकर मंच से उतरीं तथा अपनी सीट पर बैठ गयीं. डॉ. शिवानी के मानस पटल पर सात माह पूर्व शहर में हुए भीषण बम विस्फोट की घटना किसी फिल्म के दृश्यों की तरह अंकित होने लगी.

बम विस्फोट के दिन डॉ. शिवानी अपनी केबिन में वरिष्ठ डॉक्टरों के साथ हास्पीटल में लगायी गयी नयी एमआरआई मशीन की कार्य प्रणाली के बारे में बात कर रही थीं, तभी फोन की घंटी बजी, डॉ. शिवानी ने फ़ोन उठाया — ''हैलो, डॉ. शिवानी स्पीकिंग.''

''हैलो, मैं पुलिस कमिश्नर बलदेव सिंह बोल रहा हूं. आपके अस्पताल के समीप शिवाजी सर्कल तथा फ़ैशन

स्ट्रीट में दो शक्तिशाली बम विस्फोट हुए हैं. पुलिस घटना स्थल पर पहुंच चुकी है. काफ़ी नागरिकों की घटना स्थल पर ही मौत हो चुकी है, घायलों की संख्या भी बहुत अधिक है. आप अपने अस्पताल में घायलों के इलाज की जल्दी से व्यापक व्यवस्था करें तथा सभी एम्बुलेंस घटनास्थल पर तुरंत भिजवाएं.''

डॉ. शिवानी को एक पल के लिए कुछ नहीं सूझा, उसके पैरों तले की ज़मीन खिसकने लगी, पर उन्होंने शीघ्र ही अपने आप को संभाला और बिना एक पल गवाये अस्पताल की आपातकालीन उद्घोषणा प्रणाली से सभी डॉक्टरों, नर्सों एवं ड्यूटी पर उपस्थित सभी कर्मचारियों को तत्काल केज्युल्टी विभाग में पहुंचने का आदेश दिया.

इसके बाद स्टोर विभाग के प्रमुख प्रशांत जोशी को फोन किया, ''हैलो, मिस्टर जोशी, मैं डॉ. शिवानी बोल रही हूं. हमारे अस्पताल के पास शिवाजी सर्कल और फ़ैशन स्ट्रीट में बम विस्फोट हुए हैं, केज्युल्टीज काफ़ी हुई हैं, घायलों को सिविल अस्पताल में भेजा जा रहा है. आप कृपया स्टोर खुला रखें तथा फ़र्स्टएड सामग्री एवं लाइफ़ सेविंग ड्रग्स जल्दी से केज्युल्टी वार्ड में पहुंचा दें.''

''यस मैडम'', कहते हुए मि. जोशी ने रिसीवर नीचे रखा.

स्टोर इंचार्ज़ जोशी ने अविलंब फ़र्स्टएड की सारी आवश्यक सामग्री स्टोर से बाहर निकाल कर चार ट्रॉलियों में भर दी तथा वार्ड बॉय को सारी सामग्री केज्युल्टी वार्ड में अविलंब पहुंचाने का आदेश दिया.

आज डॉ. शिवानी हमेशा की तरह अपने घर से सुबह ९ बजे रवाना हुई थीं, अपनी बिटिया कार्तिका को स्कूल में छोड़कर सीधे सिविल हास्पीटल पहुंच गयी थीं. यह उनका नित्यकर्म था. जब वह हास्पीटल पहुंचीं तो फ़र्स्ट शिफ़्ट के डॉक्टर्स तथा अन्य कर्मचारी घर जाने की तैयारी में थे. सेकंड शिफ़्ट के स्टाफ का आगमन हो रहा था. यह शहर का सरकारी अस्पताल होने से यहां पर हर समय मरीज़ों की भीड़ रहती थी. आसपास के छोटे-छोटे इलाकों के मरीज भी इसी अस्पताल में ही आते थे. शहर के मुख्य बाजार में हुए बम विस्फोट की ख़बर पूरे शहर में जंगल की आग की तरह कुछ ही समय में फैल गयी. पुलिस की गाड़ियों के सायरनों से पूरा शहर गूंज उठा. बीच-बीच में एंबुलेंस तथा दमकल विभाग की गाड़ियों की तेज़ आवाज़ें

**जन्म : १९ अगस्त १९५९, दौंड, जिला-पुणे,**
**बी. कॉम.**

**: लेखन :**

**दिल्ली प्रेस की पत्रिका 'सरिता', 'मुक्ता' में फ़िल्मी कलाकारों के ढेरों साक्षात्कार प्रकाशित जिनमें स्मिता पाटिल, नौशाद अली, आनंद बख़्शी, सई परांजपे, डॉ. जब्बार पटेल, अमीन सयानी, पीनाज़ मसानी, दादा कोंडके, अशोक सराफ़, अशोक पत्की, रोहिणी हट्टंगडी, वनराज भाटिया, नाना पाटेकर, सदाशिव अमरापुरकर, महेंद्र कपूर, अल्का याग्निक, सुरेश वाडकर आदि प्रमुख हैं. पिछले कुछ समय से बच्चों के लिए कहानी लेखन, 'सुमन सौरभ', 'बालभारती' में कई कहानियां प्रकाशित.**

**: विशेष :**

**८० के दशक में लंबे समय तक 'कथाबिंब' के लिए संपादकीय सहयोग करने का सौभाग्य मिला जो मेरे लिए गर्व की बात है. साथ ही 'कथाबिंब' के लिए प्रसिद्ध व्यंग्यकार शरद जोशी का साक्षात्कार करने का अवसर नसीब हुआ जिसे मैं अपने जीवन की एक उपलब्धि मानता हूं.**

**: संप्रति :**

**भारतीय रिज़र्व बैंक, मुंबई में सहायक प्रबंधक**

कानों के पर्दे फाड़ रही थीं. शहर में अफ़रा-तफ़री मच गयी थी. सोशल मीडिया की वज़ह से बम विस्फोट की ख़बर पलभर में देश के कोने-कोने में पहुंच गयी थी.

डॉ. शिवानी ने अपने अस्पताल में घायलों के इलाज हेतु युद्ध स्तर पर तैयारी शुरू कर दी थी. अभी डॉ. शिवानी केज्युल्टी वार्ड में दाख़िल ही हुई थीं कि घायलों की पहली खेप एक प्राइवेट बस द्वारा अस्पताल में पहुंच गयी.

अस्पताल का स्टाफ़ घायलों के प्राथमिक इलाज़ में जुट गया.

डॉ. शिवानी ने अस्पताल के सुरक्षा अधिकारियों को स्पष्ट निर्देश देते हुए कहा — ''केज्युल्टी वार्ड में इस वक़्त गंभीर रूप से घायलों की जान बचाना हमारी टॉप प्रायोरिटी है. अत: केज्युल्टी वार्ड में किसी को प्रवेश न दिया जाये. ऐसे समय कई लोग बेकार में ही भीड़ करते हैं जिससे इलाज़ करनेवाले डाक्टरों और नर्सों को असुविधा होती है. मेरा यह आदेश है कि इस समय अस्पताल में किसी को भी प्रवेश न दिया जाये, फिर वह चाहे कोई राजनेता हो या कोई मंत्री या फिर प्रेस के लोग हों. इस बारे में किसी को जानकारी देने के लिए मैं स्वयं आगंतुक कक्ष में उपस्थित रहूंगी.'

सिविल अस्पताल के सभी कर्मचारी भूख-प्यास भूल कर घायलों का इलाज़ कर रहे थे. मामूली चोट लगने वालों का प्राथमिक इलाज़ करके तुंरत अन्य वार्डों में शिफ़्ट किया जा रहा था. गंभीर रूप से घायलों को आईसीयू में इलाज़ शुरू हो चुका था. डॉ. शिवानी निजी रूप से सारी व्यवस्था देख रही थीं. वह अपने कार्य में इतनी व्यस्त हो गयी थी कि उसे यह भी याद नहीं रहा कि उसकी बेटी कार्तिका की स्कूल से छुट्टी हो गयी है. वह हमेशा अस्पताल से निकलते समय कार्तिका को स्कूल से पिकअप करती थी. उसके मोबाइल पर जब स्कूल के प्रिंसिपल का फ़ोन आया तब उसे अपनी बेटी का ध्यान आया. उसने तत्काल अपने पति डॉ. अजित कुमार को फ़ोन कर कार्तिका को स्कूल से लाने का अनुरोध किया और फिर वह काम में लग गयीं. बम विस्फोट में घायल हुए क़रीब सभी लोग अस्पताल में दाख़िल हो गये थे.

डॉ. शिवानी केज्युल्टी वार्ड में एक घायल को बैंडेज़ कर रही थीं तभी उनके सहायक ने आकर बताया कि मुख्यमंत्री के सचिव का फ़ोन आया है. डॉ. शिवानी अपनी केबिन में गयी और फ़ोन उठाया.

''हैलो, डॉ. शिवानी स्पीकिंग.''

''हैलो, में सीएम साहब का सेक्रेटरी अशोक शिंदे बोल रहा हूं. बम विस्फोट में घायल हुए लोगों से सीएम साहब मिलना चाहते हैं उन्हें कितने बजे आना होगा, कृपया बतायें ताकि पुलिस को सूचित किया जा सके.''

डॉ. शिवानी ने अविलंब जवाब दिया — ''कृपया उन्हें मना कर दीजिए, आज हम यहां पर किसी भी मंत्री या नेता को आने की अनुमति नहीं देंगे.''

सीएम के सचिव को यह उत्तर अपेक्षित नहीं था. न ही उन्हें इस तरह के जवाब सुनने की आदत थी. वह थोड़ा क्रोधित होकर बोला.

''मैडम, क्या आपको मालूम है कि आप किससे बात कर रही हैं. मैं सीएम साहब का पीए बोल रहा हूं. अगर मैं यह बात साहब को बता दूं तो इसका अंजाम बहुत बुरा हो सकता है.''

''देखिए, मुझे किसी अंजाम की परवाह नहीं है. इस समय हमारा परम कर्त्तव्य उन घायलों को बचाना है जो ज़िंदगी और मौत के बीच जूझ रहे हैं, उनके इलाज़ में एक पल का विलंब भी उन्हें मौत के गाल में पहुंचा सकता है. आप कृपया मुख्यमंत्री महोदय को यह बता दें कि वे फिलहाल अस्पताल को भेंट देने का प्रोग्राम न बनायें तो उचित होगा. जब तक सभी गंभीर घायलों का प्राथमिक इलाज़ नहीं हो जाता तब तक अस्पताल में प्रेस के अतिरिक्त किसी मंत्री या नेता को भेंट देने की अनुमति नहीं दी जायेगी.'' डॉ. शिवानी ने किंचित आवेश में कहा.

मुख्यमंत्री के सचिव अशोक शिंदे तमतमा उठे. वह गत आठ वर्षों से मुख्यमंत्री के पीए हैं. आज तक किसी ने उनसे इतनी ऊंची आवाज़ में बात नहीं की थी. उनके माथे पर बल पड़ गये कि अब क्या किया जाये. साहब को यह सब कैसे बताया जाये, वे अब तक कई बड़े-बड़े मामले अपने 'लेवल' पर निपटा चुके थे. फ़ोन पर केवल सीएम का पीए बोल देने से लोगों की घिग्घी बंध जाती है. इस मैडम की हिम्मत तो देखो, चींटी के भी पर निकल आये हैं. अगर साहब से शिकायत कर दूं तो कल ही इनका तबादला ऐसी जगह हो जायेगा जहां पानी तक नहीं मिलेगा!

तभी, सीएम साहब ने उन्हें अपने केबिन में बुलाया — ''क्यों मिस्टर शिंदे, सिविल हॉस्पीटल के डीन से बात हुई क्या? हमें कब निकलना है?''

''सर, सर, वो...''

''हां, बोलो, बोलो क्या बात है?''

''सर, सिविल हास्पीटल की डीन डॉ. शिवानी ने कहा कि ...''

''क्या कहा, अरे बोलो भाई, क्या कहा उन्होंने?''

''सर, उन्होंने कहा कि वे आज किसी को भी अस्पताल

में आने नहीं देंगी. उनका कहना है कि जब तक सभी गंभीर घायलों का प्राथमिक इलाज़ नहीं हो जाता तब तक अस्पताल में प्रेस के अतिरिक्त किसी मंत्री या नेता को भेंट देने की अनुमति नहीं दी जायेगी.'' सचिव शिंदे ने एक ही सांस में सारी बात कहकर अपना जी हल्का कर दिया.

''अच्छा, डॉ. शिवानी ने ऐसा कहा है तो ...''

''सर, उनकी जुबान बहुत चलती है, न जाने अपने आपको क्या समझती हैं. सीएम का ऑर्डर नहीं मानती हैं, उनकी ये मजाल. हमारी बिल्ली हमीं से म्याऊं. सर, आप कहें तो शिवानी का ट्रांसफ़र किसी रिमोट एरिया में करवा देता हूं ताकि उन्हें अपनी नानी याद आ जायेगी.'' शिंदे कुछ कर दिखाने के मूड में अनवरत बोले जा रहे थे.

''मिस्टर शिंदे, ऐसी बेसिर पैर की बातें मत करो. मैडम ने बिल्कुल सही कहा है. हम वहां जायेंगे तो हमारे साथ लंबा कारवां चलेगा, पुलिस को भी हमारी सुरक्षा के लिए वहां तैनात किया जायेगा. प्रेस के लोग भी कवरेज़ के लिए हमारे साथ होंगे. स्थानीय नेतागण भी हमारे साथ चलेंगे. भई, पब्लिसिटी किसे पसंद नहीं है. जब हम अपने मंत्रियों-संत्रियों के साथ अस्पताल में पहुंचेंगे तो वहां पर ड्यूटी करने वाले डॉक्टरों व नर्सों एवं अन्य स्टाफ को भी परेशानी होगी. मैडम ने बिल्कुल सही कहा है.'' मुख्यमंत्री ने अपने सचिव को शांति से समझाया.

''जी सर, ठीक है.'' मिस्टर शिंदे ने मन मसोस कर मुख्यमंत्री की 'हां' में 'हां' मिलायी और क़ेबिन से बाहर जाने लगे तभी उन्होंने कहा — ''सुनो, डॉ. शिवानी से पूछ लेना कि हम अस्पताल में घायलों को मिलने कब आ सकते हैं और उसी के अनुसार अपना प्रोग्राम बनाना.''

''जी सर, ठीक है.'' कहते हुए शिंदे साहब के केबिन से बाहर आ गये.

मिस्टर शिंदे की हालत इधर कुआं तो उधर खाई की तरह हो रही थी. वह फुंफकारते हुए अपनी मेज़ पर पहुंचे और सिविल हास्पीटल की डीन डॉ. शिवानी को फ़ोन लगाया.

''हैलो, डॉ. शिवानी.''

''हां, मैं डॉ. शिवानी बोल रही हूं.''

''मैडम मैं सीएम ऑफ़िस से मुख्यमंत्री का पीए शिंदे बोल रहा हूं. आपने जो कहा था वह सीएम साहब को बता दिया गया है. वे आज अस्पताल में विज़िट नहीं देंगे. साहब ने आप ही से पूछा है कि बम विस्फोट में घायल लोगों से मिलना कब उचित होगा?''

''ठीक है, आप उनसे कल दोपहर में दो बजे आने के लिए कह दीजिए.''

डॉ. शिवानी ने दो टूक उत्तर दिया और फ़ोन रख दिया.

दूसरे दिन पुलिस ने सुबह ही सारे अस्पताल को घेर लिया. अस्पताल की सुरक्षा एज़ेंसी सतर्क हो गयी. आज राज्य के मुख्यमंत्री का आगमन होने वाला था. मीडिया की गाड़ियां सुबह से ही अस्पताल के परिसर में एकत्रित होने लगी थीं. कंधे पर कैमरा रखे हुए कैमरामैन तथा हाथों में माइक थामे पत्रकार अपनी पोज़िशन ले रहे थे. अस्पताल के स्टाफ़ सदस्यों में भी एक अलग उत्साह दिखायी दे रहा था परंतु डॉ. शिवानी के लिए आज का दिन अन्य दिनों की तरह एक सामान्य दिन था. वह अपने काम को ही अपना धर्म मानती थीं. वह अक़्सर अपने अधीनस्थ स्टाफ से यही कहती थीं कि मानव सेवा से बढ़कर और कोई धर्म नहीं है. अपने कर्त्तव्य का ईमानदारी से पालन करना ही सही मायने में ईश्वर की सेवा है. आज डॉ. शिवानी ने ऐसे घायलों को डिस्चार्ज़ देना उचित समझा जिन्हें हल्की चोटें आयी थीं ताकि केज्युल्टी वार्ड में भीड़ थोड़ी कम हो जाये. उन्होंने सभी डिस्चार्ज पेपर्स साइन किये तथा उन्हें लेकर स्वयं केज्युल्टी वार्ड में पहुंच गयीं. वे चाहती थीं कि मुख्यमंत्री के आने से पहले डिस्चार्ज़ का कार्य निपटा दिया जाये.

मुख्यमंत्री के आने से पूर्व २७ मरीज़ों को डिस्चार्ज दिया गया. डॉ. शिवानी ने अपने स्टाफ के सदस्यों को आदेश दिया कि वे अपनी ड्यूटी पर ध्यान देंगे. कोई भी कर्मचारी मुख्यमंत्री या किसी नेता के साथ अपनी तस्वीर खिंचवाने की चाह में मरीज़ों को नज़रअंदाज़ नहीं करेंगे. डॉ. शिवानी अपने स्टाफ़ को आवश्यक हिदायतें दे ही रही थीं तभी पुलिस की एक गाड़ी सायरन की आवाज़ के साथ अस्पताल के परिसर में पहुंची. ठीक इसके पीछे मुख्यमंत्री की गाड़ी थी. उनकी गाडी के पीछे बीसों अन्य गाड़ियों का काफ़िला भी भीतर दाख़िल हुआ. अस्पताल में ड्यूटी पर मौजूद पुलिस हरकत में आ गयी.

कुछ ही देर में मुख्यमंत्री अस्पताल के भीतर वार्ड में दाख़िल हो गये. मीडिया ने उनको घेर लिया, परंतु मीडिया से बाद में बात करने का आश्वासन देकर वे आगे बढ़े,

मुख्यमंत्री ने बेड पर लेटे हुए घायलों से हाल पूछा. वे कुछ घायलों से अस्पताल द्वारा मुहैया करायी जानेवाली सुविधाओं के बारे में भी पूछ रहे थे. डॉ. शिवानी उनकी बगल में ही खड़ी थीं वह मंत्रीजी और घायलों के बीच होनेवाली बातों को ध्यानपूर्वक सुन रही थीं मंत्रीजी ने पूरे वार्ड का राउंड लगाया और फिर डॉ. शिवानी की ओर मुखातिब होते हुए बोले — ''मैडम, क्या आप ही डॉ. शिवानी है?''

''जी, सर.'' डॉ. शिवानी ने संक्षिप्त में उत्तर दिया.

''आप कितने साल से इस अस्पताल में हैं?'' मुख्यमंत्री ने डॉ. शिवानी को घूरते हुए पूछा.

''सर, अगले महीने पूरे तीन वर्ष हो जायेंगे.''

''ठीक है.'' मंत्रीजी ने गहरी सांस लेते हुए कहा और सामने ही खड़े अपने निजी सचिव को इशारे से क़रीब बुलाया तथा उसे कुछ नोट करने के लिए कहने लगे.

मुख्यमंत्री की इस हरकत से डॉ. शिवानी को पसीना छूटने लगा था. उन्हें यह विश्वास हो गया कि मुख्यमंत्री अवश्य ही उसका तबादला किसी ग्रामीण क्षेत्र में करवा देंगे या किसी अन्य तरीक़े से परेशान करेंगे. वह सोचने लगी कि मुख्यमंत्री के निजी सचिव ने ज़रूर उनके कान भर दिये होंगे, पर उसने तो अपने कर्त्तव्य का उचित निर्वाह ही किया था.

□

''शिवू, ओ शिवू! शिवानी मैडम, तुम कहां खो गयी हो? उठो, कार्यक्रम ख़त्म हो गया है! सभी लोग जा रहे हैं.'' अपने पति डॉ. अजित कुमार की आवाज़ से वह अतीत से वर्तमान में लौटी.

मुख्यमंत्री का प्रस्थान हो चुका था. अन्य विशिष्ट जन धीरे-धीरे प्रस्थान कर रहे थे. सभागृह में बैठे हुए लोगों के लिए पिछले दरवाज़ों से बाहर जाने की व्यवस्था की गयी थी. डॉ. शिवानी धीरे से अपनी सीट से उठीं, उसके चेहरे पर पुरस्कार मिलने की ख़ुशी के साथ-साथ अपने उस निर्णय पर भी गर्व हुआ जिसके कारण मुख्यमंत्री के सचिव का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया था, लेकिन उन्होंने इसकी कोई परवाह नहीं की थी. वे बचपन में अपने विद्यालय में नोटिस बोर्ड पर हमेशा सुविचार लिखती थीं. आज उन्हें बरसों पहले लिखा एक सुविचार याद आ गया. ''कर्त्तव्य कठोर होता है भाव प्रधान नहीं.'' वे अपने कर्त्तव्य का पालन करते वक़्त थोडी भावाकुल हो गयी थीं, दरअसल, मुख्यमंत्री की नाराज़गी से उनका तबादला किसी रिमोट एरिया में हो सकता था जिससे उनकी बेटी कार्तिका का भविष्य ख़राब हो सकता था. वह जानती थी कि गांवों में कॉन्वेंट के स्तरीय स्कूल नहीं हैं, फिर दो वर्ष बाद वह कक्षा १० वीं में आने वाली थी. इसलिए वह किंचित विचलित हो गयी थीं, परंतु बहुत जल्दी संभल भी गयी थीं. उन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन कठोर हो कर ही किया था, उसके परिणामों की परवाह नहीं की थी. तभी तो उनकी जीत हुई थी.

डॉ. शिवानी जब हॉल से बाहर निकलीं तब उनके दामन में अपने कर्त्तव्य पालन की बदौलत प्राप्त एक भौतिक पुरस्कार के साथ बचपन की एक सीख का एक ऐसा अनमोल पुरस्कार भी था जिसने उनकी ख़ुशियों में कई गुना इजाफ़ा कर दिया था.

**बी-७९, रिज़र्व बैंक अधिकारी आवास,**
**मराठा मंदिर मार्ग, मुंबई सेंट्रल,**
**मुंबई-४०००0८**
**मो. : ९९६९३७५८५१.**

## ग़ज़ल

**डॉ. रामबहादुर चौधरी 'चंदन'**

*हमारे दिल की दुनिया की कोई सरहद नहीं होती,*
*जहां के प्यार की चाहत की कोई हद नहीं होती.*

*करिश्मा की कहो यारो ये कुदरत की निग़ाहों का,*
*जहां भी प्यार होता है वहां नफ़रत नहीं होती.*

*खुदाई ये ख़ुदा की पत्थरों की ढ़ेर हो जाती,*
*बसायी दिल की धड़कन में अगर उल्फत नहीं होती.*

*ठहर जाती हमारी ज़िंदगी अंधी गुफाओं में,*
*अगर आकाश छूने की हमें हसरत नहीं होती.*

*भरोसा बाजुओं पर है जिसे उसने ही जाना है,*
*हथेली पर खिंची रेखा कभी क़िस्मत नहीं होती.*

*ज़मीं से आसमां तक प्यार फैला है फिजाओं में,*
*सिमट जाना कहीं भी प्यार की फितरत नहीं होती.*

***फुलकिया, बरियापुर, मुंगेर,***
***बिहार-८११२११.***
***मो. ९२०४६३६५१०***

## दो ग़ज़लें

✍ केशव शरण

*करेगा वो मदद दुख दूर होगा,*
*कहा तो था मगर मजबूर होगा.*

*नरम से भी नरम को क्या पता था,*
*कि कोई क्रूर से भी क्रूर होगा.*

*करेला नीम चढ़ने-सा लगेगा,*
*गुमानी जब नशे में चूर होगा.*

*दुखी इन्सान से रिश्ता रखे क्यों,*
*सुखी इन्सान है मग़रूर होगा.*

*मुहब्बत का उजाला ही सफल है,*
*अगर अंतर जगत बेनूर होगा.*

---२----

*मुक़द्दर का यही दस्तूर होगा,*
*रहा जो पास हरदम दूर होगा.*

*हृदय को भेदती बिजली गिरेगी,*
*यही भगवान को मंज़ूर होगा.*

*मसल सब फूल जायेंगे हमारे,*
*हमारा ख़्वाब चकनाचूर होगा.*

*अचानक रुत करेगी पात पीला,*
*हवा का वार भी भरपूर होगा.*

*घनेरे इस अंधेरे में भरोसा,*
*तुम्हारी याद का इक नूर होगा.*

*एस २/५६४ सिकरौल*
*वाराणसी– २२१००२*
*मो. ९४१५२९५१३७*

## कविता

# तब बरसात हुई होगी

✍ रमेश प्रसून

शायद
रोया होगा बादल
या कुछ बात हुई होगी
तब बरसात हुई होगी,
गहराया होगा
अंधियारा
दिन में
रात हुई होगी
तब बरसात हुई होगी,
बाढ़ कभी-सूखे ने मारा
नहीं झोपड़ा फिर भी हारा,
जल-थल
नभ पावक समीर में
कोई
घात हुई होगी
तब बरसात हुई होगी,
पीर घनी है प्यास पुरानी
आंखें तो भर लायीं पानी,
शतरंजी
सपनों में घिर कर
दिल की मात हुई होगी
तब बरसात हुई होगी,
फूलों के मरते जाने की
शूलों के बढ़ते जाने की,
तन-मन
जग-जीवन उपवन में
जब शुरुआत हुई होगी
तब बरसात हुई होगी!

*४/७५, सिविल लाइन्स, टेलीफ़ोन केंद्र*
*के पीछे, बुलंदशहर- २०३००१*
*मो.: ९२५९२६९००७.*

# प्रारब्ध

राजगोपाल सिंह वर्मा

'सर, मैं अपर्णा, ठाकुर साब के घर से!', मोबाइल पर अनजाने नंबर की कॉल को अनमने ढंग से उठाते ही उधर से आवाज़ आयी.

'अपर्णा... हां, हां, ठाकुर साब के यहां से न? बोलो अपर्णा', मैंने यथासंभव अपनी आवाज़ को संयत रखते हुए कहा, पर किसी अनिष्ट की आशंका से मेरी धड़कनें संयत रहने में असफल-सी प्रतीत हो रही थीं. पर, वही हुआ, जिसका मुझे भय था.

'बाबू जी नहीं रहे,' अपर्णा ने रुंधे गले से कहा, 'रात भर बेचैनी के बाद जब सवेरे लगभग साढ़े पांच बजे उनके शरीर में निश्चेतना के भाव दिखे तो उन्हें नर्सिंग होम ले जाया गया, जहां डॉक्टर्स ने उन्हें मृत बता दिया,' अपर्णा ने आगे बताया. 'ओह,' के अतिरिक्त मैं कुछ बोल पाता उससे पूर्व ही अपर्णा ने नमस्ते कर कॉल विच्छेदित कर दी थी. शायद उसे और लोगों को भी सूचित करना था.

मैंने अपनी घड़ी पर नज़र डाली. सवेरे के ७.४० हुए थे. आधा घंटा ही हुआ था अभी मुझे मॉर्निंग वॉक से लौटे. बस एक कप चाय पीते-पीते सवेरे के अख़बारों पर एक दृष्टि डाल रहा था. मन व्यथित-सा हो गया. अख़बार के पन्ने समेट कर एक किनारे सरका दिये. आंखें अनायास मुंदी-सी जा रही थीं. सामान्यतः मैं मॉर्निंग वॉक से लौटकर चाय पीने और पेपर पढ़ने के बाद नींद का एक झटका फिर से लेता था. पर, नींद तो उड़ ही चुकी थी, और जागे रहने का भी मन नहीं था. बस मन करता था कि समय यूं ही ठहर जाये, जब तक कि मैं तन्हाई में जाकर अपने मित्र अजय प्रताप सिंह की यादों को समेट न लूं.

हालांकि ठाकुर साब से मेरी मित्रता अधिक पुरानी भी नहीं थी. मात्र लगभग साढ़े तीन साल हुए थे, उनसे मुलाकात हुए, और वह भी वाकिंग प्लाज़ा में. कॉलोनी का यह पार्क टहलने वालों के लिए स्वर्ग से कम नहीं था. ठाकुर साब अपने आठ-दस लोगों की मंडली में चुटकुले और अपने क़िस्से सुनाते हुए तेज़ और सधे क़दमों से जब पार्क की दूरियां नापते तो कोई अनजान व्यक्ति भी समझ सकता था कि यह छः फीट का इंसान ज़रूर किसी पुलिस, सेना या ऐसी ही किसी संस्था से जुड़ा होगा, जहां चुस्ती और फ़िटनेस की अलग ही महत्ता है.

यह बात मुझे टहलते हुए लगभग दो-तीन हफ़्ते बाद बाद पता चली कि सिंह साब पुलिस में फिलहाल डिप्टी एस. पी. के पद पर कार्यरत हैं और जल्दी ही सेवानिवृत होने वाले हैं. बाद में पता चला कि मूल रूप से पूर्वी उत्तर प्रदेश के बलिया के निवासी ठाकुर साब ने आगरा में ही बसने का फ़ैसला किया था और आवास-विकास कॉलोनी में एक घर भी बनवा लिया था, जो निश्चित रूप से उनके रुतबे और पद की अपेक्षा कहीं अधिक विलासितापूर्ण था. उनके तीन बेटे थे, जिनमें से दो अनुग्रह प्रताप सिंह और प्रबल प्रताप सिंह विवाहित थे और उनके साथ ही रहते थे. सिंह साब ने दोनों के लिए भी अपने मकान में अलग-अलग पोर्शन बनवा रखे थे. बड़े बेटे के लिए निजी व्यवसाय भी सिंह साब ने ही जमवाया था. मंझला बेटा शिक्षा के क्षेत्र में था. उनकी गृहस्थी अच्छी चल रही थी. तीसरा अविवाहित बेटा रचित प्रताप सिंह दिल्ली विश्वविद्यालय से मास्टर्स की पढ़ाई के साथ सिविल सर्विसेज़ की परीक्षाओं की तैयारी में जुटा था.

उन्हें रिटायर हुए बमुश्किल आठ माह ही हुए होंगे. अचानक सिंह साब का यूं चले जाना किसी के लिए भी विश्वसनीय नहीं था. पर सच का सामना तो एक-न-एक दिन करना ही होता है. और सच यही था कि अजय प्रताप सिंह अब इस दुनिया में नहीं रहे. मैंने जल्दी से स्नान किया

और नाश्ता किये बिना ही उनके आवास की ओर चल पड़ा, जो मेरे घर से लगभग चार किलोमीटर की दूरी पर रहा होगा.

सिंह साब की विशाल कोठी के बाहर से दिख रहा था एक अजीब-से किस्म का पसरा हुआ सन्नाटा. न जाने मौत को भी सन्नाटा कितना अच्छा लगता है. मेरा इस मकान में पिछले तीन सालों में न जाने कितनी बार आना-जाना हुआ होगा. कितनी महफ़िलें जमी होंगी, कितने क़िस्से, कितनी बातें... पर आज, आज जो सन्नाटा और नीरवता का माहौल था वह बहुत गहन उदासी की चादर ओढ़े था. मैंने अपनी गाड़ी जिस जगह पार्क की, उसके आसपास पांच और गाड़ियां और कई स्कूटर-मोटरसाइकिल पहले से ही खड़ी थीं. ड्राइंग रूम से सटे वरांडे में सफ़ेद चादर में लिप्त था ठाकुर साब का निष्प्राण शरीर. वह शरीर जो दिन में न जाने कितनी बार ठहाके लगाया करता और लोगों को अपने चुटकुलों से हंसाते रहता था. आस-पास दरी पर बैठे लोग बिलकुल शांत थे. मेरी पहचान के तो केवल उनके घर के लोग थे, शेष सब अनजान से थे वहां.

मैंने उनके शरीर पर श्रद्धा सुमन के रूप में गुलाब की पंखुड़ियों को अर्पित किया. मैं किंकर्तव्यविमूढ़-सा उनके आत्मारहित शरीर के पास खड़ा रहा. अपने स्थान पर वापिस जाने की न तो मुझमें इच्छा थी और न ही साहस. बस एकटक देखता रहा मैं उनकी मुंदी आंखों को! उस निस्तेज़ शरीर को जो कुछ कहानियों को जीता रहा था, ताउम्र. कोई उदासी, कोई दुःख, कोई उलझन... किसी को भी फटकने तक न दिया था अपने जीते-जी ठाकुर साब ने. कभी किसी पर मोहताज़ नहीं रहे. पर आज... वह तो निश्चेत थे, और हम निस्सहाय !

ठाकुर साब कुछ चमत्कारिक से व्यक्तित्व के स्वामी थे. पुलिस की नौकरी और उनका मज़ाकिया लहज़ा आपस में ज़्यादा मेल नहीं खाता था. उनके बारे में तरह-तरह के क़िस्से भी सुने जाते थे. सिंह साब के बारे में चर्चा थी कि वह ठीक-ठाक घूसखोर टाइप के पुलिस अधिकारी रहे थे. कई बार उनकी ठाकुर बुद्धि शिकायतकर्ता और अपराधी दोनों पर ही सामान रूप से चोट कर जाती. यानी, दोनों तरफ़ से अच्छी-ख़ासी वसूली के बाद ही मामले को रफ़ा-दफ़ा करते. हालांकि छोटे-मोटे केस के लिए वह रॉबिनहुड की भूमिका में आ जाते. उनके निर्देश थे कि इन्हें ऐसे ही रफ़ा-दफ़ा कर दिया जाये, बिना किसी लिखा–पढ़ी के. चूंकि ठाकुर साब ने पुलिस में पहले पायदान, यानि हवालदार या सिपाही के पद से अपनी नौकरी आरंभ की थी और घिसते-घिसते वह डिप्टी एस. पी. की पोस्ट तक जा पहुंचे थे, तो यक़ीनन उन्हें क़ानून और पुलिसिया पेंचों की अपनी जानकारी के कारण चलते-फिरते एनसाइक्लोपीडिया के नाम से भी जाना जाता था. किसी केस को पक्ष में करना हो या खिलाफ़, दोनों तरह के उपाय करना और ज़रूरत पड़ने पर दोनों पक्षों से घूस ऐंठना उन्हें बख़ूबी आता था.

असली क़िस्से तो उन्होंने स्वयं रिटायरमेंट के बाद अपनी मंडली में साझा करने का एक दस्तूर-सा बना लिया था. कई बार तो बातों का सिलसिला चलता रहता और

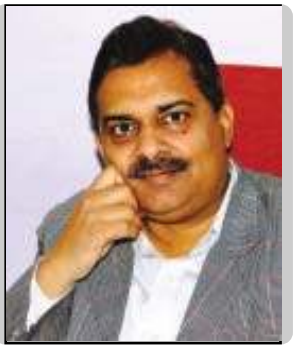

**जन्म: १४ मई; मुज़फ्फरनगर** (उ. प्र.).
**पत्रकारिता तथा इतिहास में स्नातकोत्तर शिक्षा.**
केंद्र एवं उत्तर प्रदेश सरकार में विभिन्न मंत्रालयों में प्रकाशन, प्रचार और जनसंपर्क के क्षेत्र में ज़िम्मेदार वरिष्ठ पदों पर कार्य करने का अनुभव.
पांच वर्ष तक प्रदेश सरकार की साहित्यिक पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' का स्वतंत्र संपादन. इससे पूर्व उद्योग मंत्रालय तथा स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार में भी संपादन का अनुभव.
वर्तमान में आगरा, उत्तर प्रदेश में निवासरत.
विभिन्न राष्ट्रीय समाचारपत्रों, पत्रिकाओं, आकाशवाणी और डिज़िटल मीडिया में हिंदी और अंग्रेज़ी भाषा में लेखन और प्रकाशन तथा संपादन का वृहद अनुभव. कुल लगभग ८०० लेख आदि प्रकाशित. कविता, कहानी तथा ऐतिहासिक व अन्य विविध विषयों पर लेखन.

मॉर्निंग वॉक का समय ख़त्म हो जाता. तब गेट के पास लल्लन के चाय-बन-मक्खन पर शेष कड़ियों का निपटारा होता. खंडेलवाल जी, और अग्निहोत्री जी तो रोज़ ही उन्हें उकसा-उकसा कर नयी-नयी कहानियों की फरमाइश करते और ठाकुर साब भी बस, मूड बना लेते. फिर जो बातें शुरू होतीं तो तभी ख़त्म होतीं जब या तो अग्निहोत्री जी के घर से दो-तीन बार फ़ोन ना आ जाता या खंडेलवाल जी का बेटा स्वयं ही उन्हें ढूंढ़ने लल्लन के खोखे तक न आ पहुंचता. उन कहानियों में कितनी वास्तविकता होती और कितना मसाला, यह तो स्वयं ठाकुर साब ही जानते होंगे.

लेकिन इस सब के बावजूद पिछले काफ़ी दिनों से, और ख़ास तौर से उनके रिटायरमेंट के बाद, एक बात साफ़ दिखती थी. अब से तीन साल पहले वाले ठाकुर साब अब नहीं रहे थे अजय प्रताप सिंह. उनकी मूंछों की रौनक कहीं हल्की पड़ चुकी थी, और आंखों की चमक तथा सीने का कसाव भी ढ़लान पर आ गया था. उनकी चाल और हाव-भाव में जो अंतर आया था, वह स्वाभाविक था, पर न जाने क्यूं मुझे तथा और लोगों को वह सब कुछ अस्वाभाविक–सा लगता था. रिटायरमेंट के बाद अवसाद और घर के लोगों से तालमेल न बैठने के क़िस्से आम होते हैं, लेकिन उनसे मेरी घनिष्टता में न तो मैंने स्वयं ऐसा कुछ देखा था, और न ही उन्होंने कभी मुझसे साझा किया. कभी हल्का-सा भी कोई गुबार उनके मन में नहीं दिखा. बावजूद इसके यह भी उतना ही सही था कि कुछ था जो कतरा-कतरा उनकी ज़िंदगी को खा रहा था.

ठाकुर साब अपने तीनों बच्चों की तारीफ़ों के पुल बांधते नहीं थकते थे. वे उनको सोना बताते थे. कहते थे, यह मेरे पिछले जन्म के कर्मों का फल है, जो उसने मुझे तीनों बच्चों के रूप में मुझे लौटाया है. उन्हें किसी से कोई शिकायत नहीं थी. यह भी उन्होंने बताया था कि स्वयं को व्यस्त रखने के लिए वह अपने आप को बार काउंसिल में पंजीकृत कराकर प्राइवेट प्रैक्टिस आरंभ करने वाले हैं. बहुत आशान्वित थे वह अपनी इस प्रैक्टिस को लेकर. पत्नी के देहावसान के बाद पिछले छः साल से ठाकुर साब अपने विशाल भवन के स्टडी रूम और ड्राइंग रूम तक ही सिमट कर रह गये थे. वह अपने शयन कक्ष में शायद ही कभी सोते हों.

□

...वह बात जुलाई के पहले सप्ताह की थी. दिन भी रविवार का था. जब लोग हफ़्ते भर की भागदौड़ की ज़िंदगी के विपरीत आलस्य में रहना ज़्यादा पसंद करते हैं. रात से ही रुक-रुक कर कभी तेज़ और कभी मंद बारिश हो रही थी. आसपास के इलाक़ों में तो पानी भी इकट्ठा हो गया था. आज पार्क में जाने की मेरी तो हिम्मत नहीं हुई, पर ठाकुर साब तो कुछ अलग ही मिट्टी के बने थे. हमेशा की तरह ४.३० बजे के अलार्म के सहारे उठने वाले ठाकुर साब आज भी उसी तरह पार्क में आये थे टहलने. पानी और कीचड़ के बावजूद ट्रैक तक पहुंचने का अपना रास्ता बनाते. आम तौर पर चालीस से साठ वर्ष के लोग पार्क में टहलते थे, भोर से शुरू कर और सूरज की गर्मी आरंभ होने तक लेकिन उस दिन दूर-दूर तक कोई नहीं दिख रहा था. ठाकुर साब अपने सफ़ेद जॉगिंग शू और हल्के नीले ट्रैक सूट में बारिश की धीमी-धीमी बूंदाबांदी से मोर्चा लेने आ पहुंचे थे पार्क में. बारिश हालांकि ख़त्म हो चुकी थी, फिर भी कभी-कभी हल्की फुहारों से मौसम की सौम्यता का अनुमान हो रहा था उस दिन भी.

...अकेले टहल रहे थे उस दिन ठाकुर साब जब अचानक वह ट्रैक के एक किनारे पर इकट्ठा काई पर पैर रखते ही असंतुलित होकर जो नीचे गिरे तो उनका सर निकट की फेंसिंग से ऐसा टकराया कि वह मूर्छित हो गये. उनके सिर के एक हिस्से से हल्का सा रक्त स्राव भी हुआ. दुखद बात यह थी कि उनको कोई इस अवस्था में देख भी नहीं पाया. जब देखा गया तब तक काफ़ी रक्त भी बह चुका था. जब उन्हें स्थानीय मेडिकल कॉलेज़ के आकस्मिक चिकित्सा विभाग में पहुंचाया गया, उस समय लगभग सवेरे के ७.४५ बजे थे. अर्थात, मोटे तौर पर लगभग दो घंटे वह लावारिस स्थिति में पड़े रहे थे. चौकीदार की ड्यूटी बदलने के समय उन पर निग़ाह पड़ी थी, तब जाकर आनन-फानन में उनके घर सूचित किया गया और उन्हें इमरज़ेंसी में पहुंचाया गया.

मज़बूत शरीर था, और उस पर फ़िटनेस का मुलम्मा. ठाकुर साब बच गये थे. लेकिन चोट गहरी पहुंची थी और देर तक पड़े रहने से हुए नाजुक हिस्से के रक्तस्राव से उनकी स्थिति यदि मेडिकल भाषा को सरल करके बताया जाये तो 'असहज' हो गयी थी. एम. आर. आई. तथा कैट स्कैन से कुछ ऐसे स्पॉट पर ब्लड क्लाटिंग की जानकारी प्राप्त हो

गयी थी जिसने उनके शरीर के दाहिने हिस्से में पक्षाघात का रूप ले लिया था. उस दिन जब जानकारी पर मेडिकल कॉलेज़ पहुंचा तो देख कर विश्वास ही नहीं हुआ, कि यह वही ज़िंदादिल इंसान है जो मेडिकल कॉलेज़ के न्यूरो वार्ड में ऐसे पड़ा है जैसे किसी ने इसके प्राण चूस लिये हों... निस्तेज़ शरीर जो तीन-चार दिन की कोशिशों के बाद हिलने-डुलने की स्थिति में आ पाया था. हर दिन तिल-तिल ज़िंदगी से हार मानते शरीर को देखना. और उस व्यक्ति की जिजीविषा जो दुनिया को हंसाता था, एक समय में पुलिसिया क़ानून का बड़ा स्तंभ था, जैसे दरक रहा हो...हर पल.

काफ़ी दिन और तमाम तरह के टेस्ट्स के बाद डॉक्टर्स ने उन्हें दो विकल्प दिये... या तो दिल्ली के फ़ोर्टिस अथवा मेदांता में रेफ़र कर दिया जाये या किसी निजी न्यूरो सर्ज़न की देखरेख में इनकी सेवा सुश्रुषा की जाये. दोनों ही स्थितियों में जीवन बचने की संभावनाएं क्षीण थीं, पर ज़िंदगी के शेष दिनों को घसीटने के अवसर अधिक! बस. यही थी उनकी ज़िंदगी, जिसका समय चंद डॉक्टर्स निर्धारित कर रहे थे, अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर, और जो वह कह रहे थे वह बात पूरी तरह व्यावहारिक थी.

ठाकुर साब कुल अदद २२ दिन मेडिकल कॉलेज़ के प्राइवेट न्यूरो वार्ड में रहे, और १२ दिन साधारण वार्ड में. कुल मिलाकर ३४ दिन. इसके बाद उन्हें घर पर शिफ़्ट कर दिया गया. स्टडी रूम का छोटा दीवान ही उनकी दुनिया बन गया. मेदांता और फ़ोर्टिस की बात आयी-गयी हो गयी थी. मेडिकल कॉलेज़ में भर्ती रहे इन चौंतीस दिनों में एक वह अद्‌भुत बात हुई, जिसे ठाकुर साब पता नहीं कब से दुनिया से छिपाते आ रहे थे. अब यह साफ़ हो गया था कि उनके तीन बच्चों में से दो को अपने पिता की कोई ख़ास चिंता नहीं है. बस अगर सेवा के नाम पर कोई था तो मंझला बेटा और उसकी बहू अपर्णा. जी, अपर्णा... जिसे ठाकुर साब ने कभी मन से अपनाया ही नहीं, क्यों? क्योंकि बेटे प्रबल प्रताप ने उनसे विद्रोह कर अपर्णा के रूप में अपने जिस जीवनसाथी को चुना था वह न तो स्व-जातीय थी, न उनके स्तर की. वह हॉस्टल में रहकर स्कॉलरशिप की राशि से पढ़ाई पूरी करने वाली एक साधारण ग्रामीण परिवार की कस्बाई मानसिकता और परिवेश की लड़की थी, पर मेधावी इतनी कि उसे हाई स्कूल से लेकर मास्टर्स तक हर बार मेडल्स मिले. अंततः वह शहर के प्रतिष्ठित महिला कॉलेज़ में अस्थायी रूप से सहायक प्राध्यापक के लिए चयनित भी हो गयी थी. बेटा पहले से ही विश्वविद्यालय में जंतु विज्ञान विभाग में प्राध्यापक के पद पर कार्यरत था ही.

तब, शायद ही कोई दिन बीतता हो जब मैं घंटे-दो घंटे मेडिकल कॉलेज़ में ठाकुर साब के पास बैठकर न आता होऊं. अब वह धीरे-धीरे लोगों को पहचानने लगे थे, लेकिन केवल आंखें उनकी मूक अभिवादन करतीं. न मुंह, न ज़ुबान, न मुस्कुराहट, न हिलना-डुलना, न गर्मजोशी से हाथ मिलाना... कुछ भी नहीं बचा था उस बेहतरीन इंसान के पास. वह बस या तो कुछ देर लोगों की आंखों में अपने लिए सहानुभूति के भाव पढ़कर नैराश्य के जंगल में भटकने लगते, या फिर सीलिंग की ओर देखते, चुपचाप! ऐसा लगा भी कि एक बार उन्होंने अपनी ज़ुबान पर जोर डालने की कोशिश भी की, पर उनके बोल तालू से चिपक कर रह गये, और वह फिर से उदास हो गये. इसी बीच मैंने उनकी आंखों को न जाने कितनी बार नम और बेबस होते देखा! कमज़ोरी इतनी कि न जाने कितनी ग्लूकोज़ की बोतलें और उनमें औषधियों की डोज़ उन्हें चढ़ायी गयी हो. हाथ में अभी भी ग्लूकोज़ चढ़ाने के लिए कैनुला लगा था. न जाने फिर कब चढ़ाना पड जाय ग्लूकोज़!

इस बीच प्रबल और अपर्णा ने जितनी सेवा की ठाकुर साब की, उसे देखकर मन भर आता और वाकई गर्व होता उनके संस्कारों पर. ऐसा शायद ही कोई अवसर हो, जब मैं उनके वार्ड में गया हूं और अपर्णा तत्पर खड़ी, सेवा करते हुए न मिली हो, पूरी ज़िम्मेदारी और मन से! ऐसा ही बेटा प्रबल था. वह बाहर की पूरी ज़िम्मेदारी संभाले हुए था. इसके विपरीत बड़ी बहू अमृता तथा पुत्र अनुग्रह का व्यवहार विचित्र और आश्चर्यजनक रूप से उपेक्षा से भरा था, न जाने क्यों! इन चौंतीस दिनों में मेरी उससे दो बार भेंट हुई. वह भी किसी मेहमान की तरह. अनुग्रह का न मिलना तो और भी अचरज भरा था.

'किसने कहा था बारिश में भी पार्क में जाने को?',

झल्लाते हुए अनुग्रह ने उस दिन जब वार्ड में कई लोगों के सामने बोला तो मैं चकित रह गया. जो होना था वह तो हो चुका. अब तो पिता की सेवा-टहल करने की बात थी न, बस. न अवसर था और न ज़रूरत. झुंझलाने से क्या होने वाला था. पर, उसे अनावश्यक गुबार निकालना था, सो निर्लज्ज़ता से बोलता गया —

'अब उन्हें मालूम था कि मुझे ख़ुद १२ लाख रुपयों की सख़्त ज़रूरत थी. पर मेरा तो कुछ सोचा ही नहीं उन्होंने. न यह पता कि उनके अकाउंट में कितना बैलेंस है. सब तो छिपाकर रखा उन्होंने. अब इलाज़ के लिए भी पता नहीं कब तक, कहां-कहां से उधार मांगता फिरूंगा.

तब तक प्रबल भी आ पहुंचा था. उसने भाई को मान से समझाने की कोशिश की और दवाओं का पर्चा अपने भाई के हाथ से ले लिया.

'सब ठीक होगा. आप परेशान न हों भैया.'

कहा अवश्य उसने पर बड़े भाई को तो न जाने और क्या कहना शेष था. मेरा मन इतना खिन्न हुआ कि एकबारगी वहां से चलने का मन हुआ, पर क़दम नहीं उठ पाये. बस, इतना ज़रूर कहा मैंने, कि जो भी ख़र्च है ट्रीटमेंट का, वह तो सरकार से वापिस मिलना ही है अंतत: परंतु, अनुग्रह को तो आज सारा ही हिसाब करना था, जैसे उसके पिता बेटे से उधार लेकर विश्व यात्रा के लिए निकल रहे हों.

'देखेंगे वो भी, न जाने कितने साल लगेंगे.'

और लंबी सांस खींचकर वह वार्ड के बहार वरांडे में टहलने के लिए चला गया.

ठाकुर साब का बेड उस जगह से थोड़ा दूर था, जहां यह अनावश्यक प्रसंग चल रहा था. पर, यह जगह उतनी भी दूर नहीं थी की शब्द उनके कानों तक न आ सके. उन्हें सब समझ में आ रहा था. अफ़सोस, कि वह अभी भी अपने शरीर, और इंद्रियों के गुलाम थे, और अपने भाव को अभिव्यक्त करने से मज़बूर. मैं उनके सिरहाने एक स्टूल खींचकर बैठ गया. मैंने उनको सांत्वना देने की दृष्टि से एक झूठी मुस्कान डालनी चाही. पर, ठाकुर साब की आंखों में नमी, और दृष्टि में कातरता के भाव... दोनों ने इतना विचलित किया कि चाह कर भी वह दृश्य मेरे दृष्टि पटल से ओझल नहीं हो पा रहा है.

यह वही बड़ा बेटा था जिसमें उनकी जान बसती थी. अपने प्रोविडेंट फंड तथा अन्य देयकों के लगभग ४८ लाख रुपये उन्होंने अनुग्रह के कंप्यूटर व्यवसाय में लगा दिये थे. एक गाड़ी भी ख़रीद कर दी थी. पर, फिर भी उसका उपेक्षित तथा विचित्र व्यवहार कुछ नासमझी वाली बात थी.

दरअसल मानव स्वभाव और रिश्ते इतने जटिल होते हैं कि हम जितना समझते हैं उससे कहीं अधिक वह हमारी समझ से परे होते हैं. संस्कारों का व्यक्ति के साथ ऐसा संबंध है जैसा जल का ज़मीन के साथ. व्यक्ति के कुछ संस्कार तो उसके अपने होते हैं. हम जीवन को उसकी गहराई तक जाकर देखते हैं तो बोध होता है कि हर व्यक्ति अंतत: संस्कारों का ही एक पुतला है. व्यक्ति एक जन्म का नहीं जन्म जन्मांतर के संस्कारों का परिणाम है. व्यक्ति जो कुछ होता है, करता है वह सब उसके भीतर इस जन्म के और पूर्व जन्म के संस्कारों का एक प्रवाह गतिशील रहता है. कहते हैं कि हम पिछले जन्म में जो कर्म करते हैं वह वर्तमान में भाग्य बनकर आता है. भाग्य दिखता नहीं है अंधकार में हमें दृष्टिपात नहीं होता है इसलिए उसके आधार पर जीवन कैसे जिया जाये यह बस विचारणीय हो सकता है.

अपर्णा और प्रबल... बस यही दो लोग संस्कार की तैयारी में जुटे थे. बीच-बीच में अपर्णा अपनी नम आंखों को पल्लू से पोंछती जाती. प्रबल उसे ढाढ़स बंधाता. तब तक दिल्ली से रचित भी आ चुका था. एकबारगी उसकी आंखें छलछला आयीं, फिर संयत होकर वह भी शांत बैठ गया था. वह बस अपने पिता के निष्प्राण शरीर को एक टक देर तक निहारता रहा. ठाकुर साब की मॉर्निंग वाक की मंडली में से कोई दिख नहीं रहा था. अधिकांश घर-परिवार और मोहल्ले के लोग थे.

'अब देर न करें आप लोग, जल्दी करें दाह संस्कार के लिए !',

... अचानक तंद्रा टूटी तो देखा अनुग्रह प्रताप सिंह लकदक सफ़ेद कुरता-पायज़ामे में तैयार खड़े थे, अपने पिता ठाकुर अजय प्रताप सिंह की अंतिम विदा की रस्म अदायगी के लिए ! उसकी पत्नी दूर खड़ी देख रही थी. हां, आठ साल का बेटा अनुरूप ज़रूर अपने दादा के पास खड़ा था, विचलित और अचंभित-सा... क्योंकि जन्म-मृत्यु के विस्तृत रिश्तों, और उनकी जटिलताओं से अभी तक परे जो था!

सच है... अपने हिस्से का हिसाब हमें स्वयं ही करना पड़ता है!

***१०३, रीगल रेज़ीडेंसी, आगरा एन्क्लेव,***
***कामायनी हॉस्पिटल के पीछे,***
***सिकंदरा, आगरा - २८२००७.***
***मो.: ९८९७७४११५०,***
***ई मेल : rgsverma.home@gmail.com***

# 'बड़ा बनने के लिए उद्देश्य बड़ा एवं सामाजिक रखिए!'

डॉ. अशोक भाटिया

*(लघुकथा विधा को पल्लवित-पुष्पित करने में जिन लघुकथाकारों का विशेष योगदान रहा है, उनमें डॉ अशोक भाटिया का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जा सकता है. अब तक इनकी १२ मौलिक और १५ संपादित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं. इनके दोनों लघुकथा संग्रह 'जंगल में आदमी' और 'अंधेरे में आंख' का तमिल व मराठी में अनुवाद हो चुका है. इसके साथ लघुकथा विधा की रचना प्रक्रिया पर भी इनकी आलोचनात्मक पुस्तक 'समकालीन हिंदी लघुकथा' प्रकाशित हो चुकी है. प्रस्तुत है डॉ. अशोक भाटिया से डॉ. राधेश्याम भारतीय की बातचीत.)*

**निःसंदेह आप बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न रचनाकार हैं. लघुकथा के अतिरिक्त आपने कविता, कहानी, तथा बालसाहित्य की रचना सुरुचिपूर्ण शैली में की है. परंतु पिछले बारह-तेरह वर्षों में आपने जिस तरह लघुकथा को पोषित किया है, इस तथ्य को जानकर मेरे मन में भी एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि लघुकथा में ऐसी कौन–सी चमत्कारिक शक्ति है जिसने आपको मोहित किया?**

वास्तव में हर रचनाकार अपने तरीक़े से सोचता है. कवि जब सोचेगा, कविता में ज़्यादा सोचेगा और लघुकथा लेखक जब सोचेगा तो इस तरह से सोचेगा, उसकी क़लम लघुकथा की ओर बढ़े. दरअसल हुआ यह है कि १९७५ में आपातकाल के दौरान 'धर्मयुग' ने लक्ष्मीकांत वैष्णव की लघुकथा 'लोग' आपातकाल के खिलाफ़ प्रकाशित हुई थी. वह मैंने अंबाला छावनी में इंग्लिश बुक डिपो से लेकर वहीं खड़े-खड़े पढ़ी थी. उस लघुकथा का उद्देश्य और स्वरूप मेरे मन में बस गया. उस समय 'हिंदुस्तान', 'कादंबिनी' जैसी पत्रिकाओं से लघुकथाएं पढ़-पढ़कर मेरे ज़ेहन में भी लघुकथाओं का तानाबना बनने लगा. इस तरह से पढ़ते-पढ़ते मेरे मन में जो सोच पैदा हुई उससे लघुकथा बनने लगी.

**वह कौन–सी लघुकथा है जिसे आपकी लघुकथा की विकास यात्रा में पहला सोपान बनने का गौरव प्राप्त हुआ? वह लघुकथा कब, किस पत्र-पत्रिका में प्रकाशित हुई?**

मुझे याद आता है, मेरी पहली लघुकथा 'अपराधी' जनवरी १९७७ में कालका में लिखी गयी थी. तब मैं वहां राजकीय महाविद्यालय में पढ़ाता था. सड़क के ऊपर ही एक छोटा-सा बस-अड्डा था. वहां से रेलवे स्टेशन को जा रहा था. एक ढाबे के आगे से गुज़रते हुए सूनी सड़क और ढाबे पर किसी को न पाकर सोचा — 'अगर कोई उसके बर्तनों को उठा ले जाये तो!' सहसा ढाबे वाला भीतर से नमूदार हुआ. बस, अपने कमरे तक पहुंचते-पहुंचते लघुकथा 'अपराधी' तैयार हो गयी. यह लघुकथा १९७८ में 'समग्र' के लघुकथा विशेषांक में प्रकाशित हुई.

**मैं जानना चाहूंगा कि आपको साहित्य विरासत में मिला या साहित्यिक साधना करते हुए यहां तक पहुंचे?**

डॉ. भारतीय, शायद आप नहीं जानते कि मैं एक मज़दूर का बेटा हूं. मुझे साहित्य विरासत में तो नहीं मिला लेकिन ईमानदारी और मेहनत के संस्कार ज़रूर मिले. मेरे मामा ओमप्रकाश भाटिया 'अराज' उन दिनों कविता लिखा करते थे. मुझे उनकी कविता की भाषा ने प्रभावित किया. वहीं से मैंने कविता का शिल्प सीखा. शुरुआती दौर में मेरी लघुकथाएं अलग-अलग पत्रिकाओं में छपने लगी थीं. १९७७ में ही 'मृतक' लघुकथा लिखी, जो चंद्र त्रिखा की पत्रिका 'युगमार्ग' में प्रकाशित हुई. १९८१ में 'कथाबिंब' के विशेषांक में मेरी लघुकथा 'पीढ़ी दर पीढ़ी' प्रकाशित हुई. उसके बाद मुझे प्रतियोगिता में भाग लेने का खुमार चढ़ा. मेरी लघुकथा 'चौथा चित्र', 'पीढ़ी दर पीढ़ी', 'भूख', 'टूटते हुए तिनके' आदि पुरस्कृत हुईं. बस उम्र की उमंग ऐसी थी कि मैं लघुकथा में आकंठ डूब गया. बिहारी की उक्ति है —

डॉ. अशोक भाटिया

डॉ. राधेश्याम भारतीय

'अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग.' मैं तो लघुकथा में सब अंगों सहित डूब चुका हूं. अब पार पाऊंगा या नहीं कुछ नहीं कहा जा सकता.

**अपनी रचना प्रक्रिया के बारे में बताने का कष्ट करें.**

हर लेखक की लिखने की अपनी प्रक्रिया होती है. वह कहां से शुरू होती है, कुछ कहा नहीं जा सकता. यदि वह विचारशील अधिक होगा तो रचना किसी विचार से जन्म लेगी. किसी स्थिति, प्रसंग, पात्र से भी ली जा सकती है.

एक उदाहरण देता हूं —लघुकथा 'तीसरा चित्र' जिसमें एक बूढ़े बाप अपने बेटे को तीन चित्र बनाकर लाने को कहते हैं, बेटा पहले दो चित्रों को रंगों से संजोता है और तीसरे चित्र को काली पेंसिल से. तो पिता पूछता कि इसे काली पेंसिल से क्यूं? तो बेटा कहता है कि पिता जी इस चित्र तक आते-आते सब रंग ख़त्म हो गये थे.

इस लघुकथा ने कैसे जन्म लिया — एक दिन मेरी बेटी घर के बाहर मिट्टी से खेल रही थी. उसके उलझे बाल, मिट्टी से सने हाथ और जेब में पत्थर भरे थे. वहीं से वर्ग चेतना उभरी. वर्ग चेतना का जानना ज़रूरी है. बाक़ी सब कल्पना है. तो रचनात्मक कल्पना ने जन्म लिया. सब अलग-अलग तरीक़े हैं और फिर अलग-अलग तरीकों से लिखना होता है.

**डॉ. साहब आप इस विधा के विकास हेतु निरंतर प्रयासरत हैं, इसके लिए आपको घर से बाहर भी रहना पड़ता है, ऐसे में अपने परिवार के सहयोग को किस रूप में देखते हैं?**

रचनाकार को सक्रिय सामाजिक संपर्क के लिए बाहर निकलना ही पड़ता है. वैसे भी घर के सहयोग बिना यह सब संभव नहीं. मेरी पत्नी साहित्य की बहुत बड़ी पाठक है. मेरे घर में कहानी की ऐसी कोई क़िताब नहीं जो उसने नहीं पढ़ी. मेरी दो बेटियां हैं लेकिन उन्होंने कभी मेरे लेखन में व्यवधान नहीं डाला. बस थोड़ी नींद कम करनी पड़ती है. आदमी में कुछ करने की उमंग हो तो कहीं भी पहुंचा जा सकता है.

**सर जी, लघुकथा को एक साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित करने वालों में हरियाणा राज्य का अपना एक विशेष स्थान है. बीसवीं शताब्दी के आठवे-नौवे दशक के मध्य लघुकथा लेखन को लेकर सिरसा और करनाल में एक आंदोलन की तरह कार्य किया गया था. करनाल में इस आंदोलन का नेतृत्व आप कर रहे थे और सिरसा में डॉ. रूपदेवगुण और राजकुमार निजात के हाथों में था. आप उनके इस कार्य को किस दृष्टि से देखते हैं?**

आपने ठीक कहा है हरियाणा में लघुकथा के दो केंद्र थे. सिरसा और करनाल. सिरसा में डॉ. रूपदेवगुण और राजकुमार निजात का इस विधा के उत्थान में विशेष प्रकार का योगदान रहा है. उन्होंने निरंतर साहित्यिक आयोजन करवाये. उन आयोजनों में लघुकथा का मंचन भी करवाया. उन दोनों के संपादन में 'हरियाणा का लघुकथा संसार' नाम से पुस्तक आयी. यह पुस्तक बड़ी मेहनत से तैयार की गयी थी. जो रचनाकारों के लिए विशेष महत्व रखती है. करनाल का प्रश्न है तो हमारे यहां रचनात्मक, लेखन और संपादन का कार्य अधिक हुआ.

**हरियाणा में समकालीन लघुकथा लेखन पर आप क्या टिप्पणी करना चाहेंगे? और इस कार्य में किस-किस लघुकथाकार का योगदान सराहनीय मानते हैं?**

राष्ट्रीय स्तर पर हरियाणा से दो ही लघुकथाकारों के नाम मेरे ज़ेहन में आ रहे हैं. एक पृथ्वीराज अरोड़ा और

दूसरा रामकुमार आत्रेय. इसके अतिरिक्त पूरण मुद्गल जोकि सिरसा से ही हैं. उनका १९८२ म'निरंतर इतिहास' नाम से लघुकथा-संग्रह आया. मुद्गल जी प्रगतिशील चेतना के साहित्यकार हैं. उनकी बेटी शमीम शर्मा ने भी लघुकथा पर कार्य किया है. १९८२ में ही शमीम के संपादन में 'हस्ताक्षर' नाम से लघुकथा संकलन आया, जिसमें तीन सौ के आसपास लघुकथाकार शामिल थे. सिरसा से शील कौशिक, अंबाला से विकेश निझावन, सुरेंद्र गुप्त, हिसार से रामनिवास मानव एवं कमलेश भारतीय और मधुकांत रोहतक में तथा अरुण कुमार कुरूक्षेत्र में बैठकर लघुकथा लेखन में योगदान दे रहे हैं. रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' जो पहले दिल्ली में थे, अब हरियाणा में रहकर स्वयं तो लघुकथा लिख रहे हैं साथ में 'लघुकथा डॉट कॉम' (इंटरनेट पत्रिका) के माध्यम से लघुकथा के विकास हेतु प्रयासरत हैं.

**लघुकथा को एक साहित्यिक विधा के रूप में स्थापित करने का महान कार्य संपादन करने वाले शीर्षस्थ नामों में आपका नाम भी शामिल है. मैं यह जानना चाहता हूं कि हरियाणा के ऐसे अन्य कौन-से लघुकथा लेखक हैं जो आज राष्ट्रीय स्तर पर चर्चित हैं.**

हरियाणा से कई बड़े नाम ऐसे हैं जो बाद में दिल्ली में स्थापित हो गये. विष्णु प्रभाकर कुछ समय हरियाणा में रहे. वे तो विख्यात नाम हैं. रमेश बतरा चंडीगढ़ में नौकरी करते थे. इसलिए हरियाणा से माने जाते हैं. उन्होंने 'साहित्य निर्झर', 'सारिका' और 'संडेमेल' जैसी पत्रिकाओं में बैठकर लघुकथा को संवारा. ना केवल अपनी रचनाओं से बल्कि नये लेखकों को लिखना सिखाने का भी उन्होंने बख़ूबी काम किया. उसके बाद दो नाम लेना चाहता हूं. एक पृथ्वीराज अरोड़ा, दूसरे रामकुमार आत्रेय. पृथ्वीराज अरोड़ा जो कुरूक्षेत्र से थे जिन्होंने आठवें दशक की शुरुआत में 'सारिका' के माध्यम से लघुकथा को नये आयाम देने का काम किया. उनकी 'दया', 'दुख', 'कथा नहीं', 'विकार' आदि कई श्रेष्ठ रचनाएं हैं. दूसरा नाम रामकुमार आत्रेय का है जो ग्रामीण पृष्ठभूमि से जुड़े साहित्यकार हैं. मूलतः कहानीकार होने के कारण उनकी रचनाओं में सहजता और सजगता का बड़ा सुंदर मिश्रण मिलता है. पाठक की दृष्टि से आत्रेय की लघुकथाएं सफल मानी जाती हैं. इनकी कई लघुकथाएं मुझे विशेष रूप से प्रभावित करती हैं, हरियाणा की मिट्टी की गंध इनकी लघुकथाओं में व्याप्त है. ये अभी भी निरंतर लिख रहे हैं. ये दो नाम हमारी हिंदी लघुकथा में बड़े गर्व से लिये जाते हैं.

**आप हरियाणा की महिला लघुकथाकारों के लेखन के बारे क्या कहना चाहेंगे?**

इस पुरुष प्रधान समाज में जब महिलाएं क़लम उठाती हैं तो उनकी रचनाएं दो अर्थों में पुरुषों से अधिक महत्वपूर्ण होती हैं. एक तो वे घर से समय बचाकर क़लम उठाती हैं. दूसरे, उनकी रचनाओं में संवेदना का घनत्व पुरुषों की तुलना में कहीं अधिक होता है. हरियाणा में आम तौर पर कहानी लेखिकाओं ने ही लघुकथा में क़लम चलायी है. इनमें उर्मि कृष्ण, कमल कपूर, अंजु दुआ जैमिनी और कमला चमोला तो कहानी के जाने माने नाम हैं. इनकी लघुकथाओं में शोषण का विरोध और मुक्ति की छटपटाहट मुख्य रूप से महसूस की जा सकती है, साथ ही इनकी लघुकथाओं में कथा की जो रवानगी है, उसमें कहानी का-सा आकर्षण छिपा होता है. यही बात शील कौशिक, डॉ. मुक्ता, इंदिरा खुराना, उषा लाल, मीनाक्षी जिजीविषा, कमलेश चौधरी, इंदु गुप्ता आदि की लघुकथाओं के बारे भी कही जा सकती है.

**क्या लघुकथा के लिए अपनायी जाने वाली रचना प्रक्रिया तयशुदा होती है अथवा प्रत्येक लेखक की अपनी-अपनी?**

एक कवि नाटककार हैं राजेश जोशी. उनकी एक पुस्तक है 'एक कवि के नोट्स', उसमें लिखते हैं — ''रचना प्रक्रिया को जाना नहीं जा सकता. मेरी क्या, किसी की भी नहीं. इससे तो रचने का रहस्य ही समाप्त हो जायेगा.'' वैसे भी एक लेखक को कोई प्रसंग, घटना, स्थिति या पात्र प्रभावित कर सकते हैं दूसरे को नहीं. ऐसे ही एक व्यक्ति के विचार दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करें ज़रूरी नहीं. मैं समझता हूं रचना प्रक्रिया तयशुदा होनी भी नहीं चाहिए क्योंकि इससे तो रचना का विकास ही रुक जायेगा.

**किसी भी लघुकथाकार को अपनी ख़ुद की रचना को उत्कृष्ट बनाने के लिए क्या करना चाहिए?**

आज जो नये लघुकथाकार लिख रहे हैं उनमें आमतौर से जल्दी स्थापित होने की हड़बड़ी है. उनकी रचना पाठक, या समाज पर क्या प्रभाव छोड़ रही है, इसकी चिंता उन्हें नहीं है. एक दो सुझाव दिये जाने ज़रूरी हैं. पहली बात, उन्हें रचनात्मक विकास के लिए हिंदी का ही नहीं, विश्व का

सर्वश्रेष्ठ साहित्य पढ़ना चाहिए, वह हिंदी और अन्य भाषाओं का हो. लघुकथा ही क्यों कहानी पढ़ें ...नाटक पढ़ें, उनके पढ़ने से उन्हें पता चलेगा कि रचनाधर्मिता क्या होती है. यथार्थ के कितने आयाम होते हैं. उसकी सूक्ष्मता क्या होती है. हम अपने सामाजिक संपर्कों को सक्रिय रखें.

दूसरा, समाज में जो बदलाव आ रहे हैं या समाज में निरंतर हो रहे परिवर्तनों का ज्ञान हमें होना चाहिए. दोनों चीज़ें हमारी रचनाधर्मिता को प्रभावित करती हैं.

तीसरा, लघुकथा किसी एक प्रसंग का वर्णन भर नहीं है. आज कल 'फ़ेसबुक', 'व्हाटएप' पर प्रायः ऐसी ही सामग्री आ रही है. ऐसी सामग्री से केई लेखक बड़ा नहीं बन सकता. बड़ा बनने के लिए उद्देश्य बड़ा रखिए, सामाजिक उद्देश्य रखिए. पाठक को ध्यान में रखकर लिखिए. लिखिए क्या! जब हम एक रचनाकार को सृजनकर्ता मानते हैं तो किसी स्थिति, किसी प्रसंग को पुनःसजृन कीजिए. उसको एक तरफ़ रखिए और फिर अपनी कल्पना एवं रचनात्मक भाषा के साथ नये सिरे से लिखिए. एक बात को सड़क पर खड़ा आदमी कह रहा है. वही बात आप कहिए. अर्थ भी वही निकलेगा. आपकी भाषा संरचनात्मक होनी चाहिए. उसमें सौंदर्य आना चाहिए. कहा भी गया है सत्यम, शिवम, सुंदरम. सत्य और शिव के बाद सुंदर ही आता है. यदि रचना सुंदर नहीं बनेगी तो उसमें आकर्षण नहीं आयेगा और पाठकों को भी प्रिय नहीं होगी. फिर रचना इस तरह छूटती है जैसे गाड़ी सब कुछ पीछे छोड़ती चली जाती है.

**क्या लघुकथाकार समाज की नब्ज़ टटोलने में पूरी तरह कामयाब हो रहे हैं. मेरा मतलब गंभीर विषयों पर लेखनी चला रहे हैं या उन्हें अनदेखा कर रहे हैं.**

बड़ा गहरा सवाल किया है. दरअसल कुछ लेखक तो विषय की तलाश इस तरह करते हैं जैसे प्लॉट की तलाश करते हैं. रचनाकार कभी ऐसा किया नहीं करता. एक विषय है प्रेम. एक ग़ज़लकार इस विषय पर अनेक रचनाएं लिख सकता है तो एक लघुकथाकार एक ही विषय पर दस-बीस लघुकथाएं क्यों नहीं. जैसे हमारे समाज में सांप्रदायिकता की समस्या है, जातिवाद, संकीर्णता है क्या एक लघुकथा लिखकर उसका कर्तव्य पूरा हो जायेगा. भीष्म साहनी ने सांप्रदायिकता पर एक पूरा उपन्यास 'तमस' लिख डाला. उस उपन्यास के बाद भी उन्हें संतुष्टि नहीं हुई. उसके बाद 'पाली', 'झुटपुटा', 'अमृतसर आ गया है' जैसी कई कहानियां इसी विषय पर लिखीं. उन्हें लगा कि यथार्थ के और अनेक आयाम हैं जो उपन्यास में पूरे नही आ सकते हैं. जब एक उपन्यासकार विषय के यथार्थ को एक उपन्यास में नहीं उकेर सकता तो लघुकथाकार ऐसा कैसे कर सकता है. लघुकथाकार को भी ऐसे ही अनेक रचनाएं लिखने की ज़रूरत है. पर वह बनी बनाई रचनाएं अधिक दे रहा है. पिष्टपेषण अधिक हो रहा है. उन्हें स्थापित होने की हड़बड़ी है. हमारे समाज में कितने सामाजिक परिवर्तन हुए, अब वैश्वीकरण सिर चढ़कर बोल रहा. कॉर्पोरेट जगत के लोग पूरी दुनिया को एक ही रंग में रंग देने को आतुर हैं. यह चुनौती रचनाकार के सामने है कि वह कैसे अपनी विविधता, अपनी संस्कृति, अपने रीतिरिवाज, और कैसे अपनी परंपराओं को बचाकर रख सकता है. उसके लिए यथार्थ के नये-नये रूपों को तलाशना होगा. इसे लघुकथाकर अभी पूरी तरह से ला नहीं पा रहे हैं. हां, कोशिश की जा रही है पर अभी पूरी तरह कामयाब नहीं हो पा रहे हैं. आज केवल पारिवारिक संबंधों की टूटन, वृद्धों के प्रति व्यवहार लिखने मात्र से काम नहीं चलेगा. आज जो राजनीतिक अधःपतन हो रहा है; किसान आत्महत्याएं कर रहे हैं; मज़दूर दो जून की रोटी के लिए मारा-मारा फिर रहा है; धार्मिक उन्माद सिर पर चढ़कर बोल रहा है. उन पर लिखने की ज़रूरत है.

**आज के समय में लेखकों के सामने कौन–सी चुनौतियां हैं और उनका सामना किस प्रकार किया जा सकता है?**

लघुकथाकारों के सामने सबसे पहली चुनौती यह है कि आज समाज में जो संवेदनहीनता बढ़ रही है उसमें अपनी संवेदना को बचाकर रखने की ज़रूरत है. दूसरा, जो उनकी लघुकथा है वो सही रचनात्मक उभार लेकर हमारे सामने आये. तीसरी बड़ी चुनौती है कि रचनाकार लघुकथा को एक ऐसे शिल्प, शैली और भाषा में प्रस्तुत करें ताकि वह पाठक को सही दिशा में प्रभावित करे. ये तीनों बड़ी चुनौतियां हैं. मैं तो यहां तक कहना चाहूंगा कि कई बार लघुकथा को लघु यथार्थ बोध की रचना मानकर एवं सरल मानकर छोटे रास्ते से निकलकर क़िताबें छापी जा रही हैं. लघुकथा लिखना कठिन है. यह कहीं से भी सरल नहीं है. इसमें भी चिंतन उतना ही ज़रूरी है जितना कहानी, कविता, नाटक, या साहित्य की किसी अन्य विधा में.

**किसी भी विधा की उपलब्धि के लिए उसकी**

**समीक्षा का विशेष महत्व होता है. मैं समझता हूं कि अभी तक लघुकथा के समीक्षकों की कमी रही है. यह कमी कैसे पूरी की जा सकती है?**

आपने भी पढ़ा होगा कि जब भी कोई नयी विधा या नयी शैली साहित्य में आती है तो उसकी समीक्षा का कार्य भी उसके लेखकों को ही करना पड़ता है. छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद, निराला यदि छायावादी कविताओं की समीक्षा न करते तो शायद छायावाद इस रूप में स्थापित न होता. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के प्रथम संस्करण में छायावाद आंदोलन की उपेक्षा की. जयशंकर प्रसाद और निराला ने अपने समीक्षाकर्म से इसे उभारने का प्रयास किया और फिर इसी से प्रभावित होकर शुक्ल ने दूसरे संस्करण में छायावाद की मुक्त कंठ से प्रशंसा की.

जहां तक लघुकथा की बात है, इसमें भी लेखक समीक्षा कर्म निभा रहे हैं. भगीरथ और बलराम अग्रवाल इस क्षेत्र में सक्रिय हैं. इनके साथ-साथ कई लेखक ऐसे भी हैं जो समीक्षा कर्म ही कर रहे हैं जिनमें डॉ. बी. एल आच्छा, डॉ. जितेंद्र जीतू और उमेश महादोषी हैं.

**लघुकथा लेखन में बिंब, प्रतीक, फैंटेसी की कितनी गुंजाइश रहती है.**

लघुकथा में बिंब... बिंब मनुष्य की कमज़ोरी है. आपको वे कहानियां याद रहेंगी जिसका कोई चित्र आपके सामने आता है. चाहे 'क़फ़न' कहानी में प्रसव पीड़ा से छटपटाती बुधिया हो या शराब पीकर लड़खड़ाते घीसू, माधव हों. बिंब मनुष्य की कमज़ोरी भी है और उसकी शक्ति भी. लघुकथा में बिंब यानी चित्रात्मकता होगी तो उसकी प्राणवत्ता को बढ़ायेगी.

आपने प्रतीक और फैंटेसी का अच्छा ज़िक्र किया है. प्रतीक लघुकथा में इसलिए ज़रूरी है क्योंकि आज अधिकतर लघुकथाएं सपाट रूप में लिखी जा रही हैं. कुछ इसके समर्थक भी हैं. सपाट रचना के बहुत अधिक समय तक टिकने के कम ही आसार होते हैं. या उसके प्रतीक या फैंटेसी (फैंटेंसी दरअसल कलात्मक कल्पना का ही रूप है) का प्रयोग करके रचना लिख रहे हैं. उसमें एक नया रूप आयेगा.

**लघुकथा लेखन में प्रायः शिल्प को लेकर चर्चा की जाती है कृपया बताइए कि लघुकथा लिखते समय कैसे और किस प्रकार शिल्प का ध्यान रखा जाये.**

मैं शिल्प से पहले विषय वस्तु पर आता हूं. वस्तु है तो शिल्प है. शिल्प किसका? वस्तु का. हमने वस्त्र ओढ़े हैं यह हमारा शिल्प है, हमारी शैली, स्टाइल है. लेकिन मनुष्य है तभी तो वस्त्र हैं. इसलिए वस्तु का महत्व पहले है और शैली का बाद में. इसमें दो तीन बातें हैं. यदि लघुकथाकार लघुकथा रचते समय तयशुदा पैमाने अपनायेगा तो लघुकथा कृत्रिम बनेगी. संभव है आप खुले रूप में लिखे जा रहे हैं और लिखते-लिखते कहीं निकल जायें, तो निकल जाने दीजिए... हो सकता है कि वह कहानी का रूप धारण कर ले. जबरदस्ती न लिखो... दूसरी बात, लिखने से पहले तैयारी करें... आप लिखें तो भाषा पर विशेष ध्यान दें. और लिखते समय यह देखें कि संवाद, वर्णन, परिवेश की कितनी गुंजाइश है. यदि पहले की तैयारी होगी तो शिल्प आपके हाथ में होगा. मैंने देखा है कि ज़्यादातर लेखक संवादों में ख़ुद घुसे रहते हैं. पात्र नहीं बोल रहा, लेखक की अपनी भाषा बोल रही है.

**लघुकथा में प्रयोगों की कितनी गुंजाइश समझते हैं.**

देखिए, समय परिवर्तनशील है और नये समय के यथार्थ को व्यक्त करने के लिए अपनी शैली, और शिल्प में भी बदलाव की ज़रूरत होती है. यदि वर्णनात्मक पद्धति में ही सब कुछ कहा जाता तो फिर लघुकथा में किसी भी प्रयोग की कोई गुंजाइश नहीं थी. मैंने आपातकाल का ज़िक्र किया. उसमें लक्ष्मीकांत वैष्णव की 'लोग' लघुकथा और किसी रूप में नहीं आ सकती थी. उसमें एक व्यक्ति घर के बाहर बैठा अपना काम कर रहा है. कुछ लोग आते हैं और कहते हैं कि देखो वह बैठा काम कर रहा है. वह खड़ा हो गया... कहते हैं देखो वो खड़ा हो गया. वह हंसता है तो कहते हैं देखो वो हंस रहा है. वह घर में घुस जाता है तो कहते हैं कि घर में घुस गया... उसके घर का दरवाज़ा खटखटाया जाता है. दरवाज़ा नहीं खुला. जब दरवाज़ा नहीं खुलता तो उसका दरवाज़ा तोड़ा गया. तो वह छत पर लटका मिला. वे बोले — ''देखो, साला मर गया.'' फिर वे किसी और के घर की ओर चल दिये. आपातकाल पर यह प्रतीकात्मक लघुकथा इसी शैली में कही जा सकती थी. तो लेखक यदि समय के मुताबिक यथार्थ का दबाव महसूस करेगा तो उसे व्यक्त करने के लिए नये प्रयोग करने होंगे. कोई बेचैनी रचना को

अपना नया शिल्प उसमें खोजने की ओर ले जाती है. उसकी प्रतीक शैली, फैंटेसी, आत्मकथात्मक शैली, डायरी, आधे–अधूरे वाक्य की शैली, पत्र शैली, एक-एक शब्द की...एक-एक वाक्य हो सकता है. एक पूरा लंबा एक वाक्य हो सकता है. मेरी लघुकथा 'स्त्री कुछ नहीं करती!' में कोई पूर्ण विराम नहीं. उसमें २७ क्रियाएं हैं. इससे पता चलता है कि स्त्री के जीवन में कहीं पूर्ण विराम नहीं है. इसे प्रयोग करके ही बताया जा सकता है. असगर वज़ाहत, विष्णु नागर ...विष्णु नागर की 'ईश्वर की कहानी' तो सारी प्रयोगधर्मी लघुकथाओं की पुस्तक है. भगीरथ, बलराम अग्रवाल, सुकेश साहनी ने प्रयोग किये. इनके प्रयोग देखे जाने की ज़रूरत है. और लघुकथा में इन प्रयोगों की बहुत गुंजाइश है.

**लघुकथा लेखन को समृद्ध बनाने में हरियाणा ग्रंथ अकादमी की पत्रिका 'कथा समय' और हरियाणा साहित्य अकादमी की पत्रिका 'हरिगंधा' के योगदान से आप कितने संतुष्ट हैं?**

बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है. देखिए, हरियाणा साहित्य अकादमी से पहले मैं राष्ट्रीय स्तर के आयोजन की बात बताता हूं. राष्ट्रीय स्तर की साहित्य अकादमी ने पिछले वर्ष रवींद्र भवन, नयी दिल्ली में पहली बार लघुकथा पाठ करवाया, जिसमें हरियाणा से मुझे शामिल किया. उसके बाद दिल्ली साहित्य अकादमी ने अपने साहित्यिक महोत्सव में अन्य विधाओं के साथ-साथ लघुकथा पर भी कार्यक्रम करवाया, जिसमें मेरे साथ १० लेखकों ने लघुकथा पाठ किया. अब अकादमियां लघुकथा को गंभीरता से ले रही हैं.

आपको जानकर ख़ुशी होगी कि हरियाणा साहित्य अकादमी की पत्रिका 'हरिगंधा' पहले अंक से ही लघुकथाओं को उचित स्थान दे रही है. नवंबर-दिसंबर १९८५ में 'हरिगंधा' के प्रवेशांक में मेरी दो लघुकथाओं 'चौथा चित्र' और 'भावना' को शामिल किया गया. हरिगंधा ने २००७ में मेरे सहयोग से लघुकथा विशेषांक निकाला. फिर जनवरी २०११ में मेरे सौजन्य संपादन में वृहद लघुकथा विशेषांक निकाला गया. हरियाणा साहित्य अकादमी ने अभी पिछले दिनों पांच कार्यशालाओं का आयोजन किया, जिसमें कॉलेज़ के विद्यार्थियों को साहित्य की अन्य विधाओं के साथ-साथ लघुकथा विधा का भी प्रशिक्षण दिया.

हरियाणा ग्रंथ अकादमी ने २०१३ में 'समकालीन हिंदी लघुकथा' नामक मेरी आलोचना पुस्तक प्रकाशित की. हरियाणा ग्रंथ अकादमी की पत्रिका 'कथा समय' में शुरू से ही लघुकथाएं प्रकाशित होती रही हैं. इस तरह पत्रिकाओं में लघुकथाएं प्रकाशित होना लघुकथा के उन्नयन में महत्वपूर्ण योगदान करती हैं.

**लघुकथा विकास में स्कूल, कॉलेज़ों की क्या भूमिका हो सकती है?**

ये आपने अलग-सा प्रश्न किया है. अब कोई बच्चा सबसे पहले उपन्यास तो नहीं लिख सकता. शुरुआती दौर में वह छोटी कविता लिखेगा, लघुकथा लिखेगा. यदि उसमें साहित्य का रुझान होगा तो कहानी भी लिख सकता है. शुरुआती दौर में स्कूल, कॉलेज़ के बच्चों में जो ईमानदारी, जो जज़्बा और भ्रष्टाचार के खिलाफ़ जो आक्रोश होता है यदि उसको रचनात्मक दिशा में ले जाया जा सकता है, तो अकादमी ही ले जा सकती है. स्कूल कालेज़ों में इस तरह के कार्यक्रम करवाते रहने चाहिए. ताकि बच्चों की क़लम चलती रहे.

वास्तव में क्या है कि साहित्य हमें खूंखार होने से बचाता है. वो हमें मानवीय बनाता है. लिखना सिर्फ़ पाठक के लिए ही नहीं बल्कि उससे रचनाकार भी बनता है. अपनी कमियों से पार पाता है. यह अनिवार्य भी है कि अकादमी ऐसे कार्य करें.

**लघुकथा के विकास में राष्ट्रीय स्तर पर किन-किन लघुकथाकारों का विशेष योगदान मानते हैं.**

राष्ट्रीय स्तर पर यदि देखें तो... मैं विष्णु प्रभाकर से शुरू करता हूं. सहजता और मानवीयता उनकी १०१ लघुकथाओं में पढ़ने को मिलती है. दूसरा नाम हरिशंकर परसाई जिन्होंने लघुकथाओं में व्यंग्यात्मक शैली को स्थापित किया. इसके बाद रमेश बतरा जिनकी सारी की सारी लघुकथाएं कलात्मकता का अद्‌भुत उदाहरण हैं. एक भगीरथ हैं जो रचना और आलोचना में बड़ा नाम है. बलराम अग्रवाल, सुकेश साहनी हैं. ये लघुकथा में निरंतर सक्रिय रहने वाले नाम हैं. हरियाणा से मैं पहले ही दो नाम बता चुका हूं, पृथ्वीराज अरोड़ा, दूसरे रामकुमार आत्रेय.

**लघुकथा विधा के प्रचार-प्रसार में पत्र-पत्रिकाओं का क्या योगदान रहा है?**

अक्सर लघुकथाकारों द्वारा कहा जाता है कि पत्रिकाएं लघुकथा की उपेक्षा कर रही हैं. पर वास्तव में ऐसा नहीं है.

पत्र-पत्रिकाएं ही तो लघुकथा का प्रचार-प्रसार करती हैं. जब कमलेश्वर के संपादन में 'सारिका' का अक्तूबर १९७३ में लघुकथा बहुल अंक निकला तो उसका असर दूरगामी रहा. उससे लघुकथा वहां तक पहुंची जहां उसके बिना नहीं पहुंच सकती थी. कुछ पत्रिकाओं ने लघुकथा इसलिए भी छापी क्योंकि वह समय की मांग थी. और 'सारिका' के साथ-साथ साहित्यिक पत्रिकाओं के लघुकथा विशेषांक लगातार छप रहे थे. हम याद करें चंडीगढ़ से 'साहित्य निर्झर', 'शब्द' का विशेषांक, अंबाला कैंट से 'शुभतारिका', दिल्ली से 'समग्र' बिहार से 'नवतारा', मुंबई से 'कथाबिंब', 'वर्षवैभव' लघुकथा विशेषांक ने लघुकथा की उर्वर भूमि तैयार की. ये सारी पत्रिकाएं अव्यावसायिक थीं. लघुकथाओं का सिलसिला चलता रहा. बहुत प्रमुख पत्रिकाओं में मध्यप्रदेश से 'समांतर', पटना से 'दिशा' एक और दो भाग, राजस्थान से 'संबोधन' दिल्ली प्रकाशन दिल्ली की 'आजतक', लखनऊ से 'सरस्वती सुमन' और अंडमान निकोबार से एकमात्र पत्रिका 'द्वीपलहरी' पत्रिकाओं के लघुकथा विशेषांक अपना विशेष महत्व रखते हैं. हरियाणा साहित्य अकादमी की पत्रिका हरिगंधा ने भी अब तक तीन लघुकथा विशेषांक निकाले हैं. थोड़ा लघुकथा लेखकों को भी सोचना होगा कि जो पत्रिकाएं लघुकथा नहीं छाप रहीं या छापने के बाद बंद कर दिया, कहीं इसका कारण उनकी लघुकथाओं में तो मौजूद नहीं. 'उद्‌भावना' में पहले नियमित लघुकथाएं आती थीं फिर कभी-कभी आने लगीं. कई बार संपादकों की सोच भी काम कर रही होती है. 'पहल' पत्रिका ने कह रखा है कि हमें लघुकथा और समीक्षा मत भेजें. उस दृष्टि से हमें देखना होगा.

आज कथादेश, कथाक्रम, कथा समय, कथाबिंब, समावर्तन, हंस, मधुमती, उत्तरप्रदेश, शीराजा, हिमप्रस्थ, सरस्वती सुमन, अविराम, शुभतारिका, पुष्पगंधा, पंजाब सौरभ आदि पत्रिकाओं ने लघुकथा को नियमित स्थान दिया हुआ है. अब लघुकथा लेखकों पर निर्भर करता है कि वे लघुकथा को कहां ले जाते हैं.

**साहित्य के विकास हेतु प्रकाशकों की क्या भूमिका रहती है?**

इस बारे में मेरे विचार थोड़े अलग हैं. पहली बात प्रकाशकों को अपनी भूमिका बदलनी होगी. वे क़िताबें छापकर आराम से बैठ जाते हैं और यह भी नहीं देखते कि ये पाठक तक कैसे जायेंगी. साथ ही रोना रोते हैं कि क़िताबें बिक नहीं रहीं. फिर प्रकाशक क्यों बने हो आप—घी तेल बेचिए...छोड़ दीजिए इसको.

दूसरा, लेखकों को भी अपनी भूमिका बदलनी होगी. लेखक अपनी क़िताब लेकर घर से बाहर क्यों नहीं जाते... प्रदर्शनी नहीं लगाते. पहाड़ी इलाक़ों या दूर दराज़ के गांव, देहात के लोगों को क्या पता कि दिल्ली, इलाहाबाद में कौन-सी क़िताबें छप रही हैं. साहित्य में क्या कुछ हो रहा है. मैं कहता हूं लेखक और प्रकाशक यदि अपनी क़िताबें लेकर जायेंगे तो पाठक क़िताबों को हाथों हाथ लेंगे.

मैं फिर कहता हूं कि क़िताब के चार चरण —अच्छी सामग्री, अच्छा प्रोडक्शन, कम क़ीमत...क़िताब ख़ुद चलकर पाठकों तक जाये... आज जब कहते हैं कि मीडिया में क़िताबों पर ख़तरा मंडरा रहा है. प्रकाशन बंद हो जायेंगे... वे कहते हैं तो आप इसके लिए क्या करते हैं.

**लघुकथा के भविष्य को लेकर आप क्या सोचते हैं?**

सच तो यह है कि मिली-जुली सोच है. लघुकथा के अलग-अलग तरह के पाठक हैं. हर अख़बार में लघुकथाएं आती हैं. उसमें अलग तरह के पाठक हैं. स्थापित पत्रिकाओं में भी लघुकथाएं प्रकाशित होती रहती हैं. उसमें दूसरी तरह के गंभीर पाठक हैं. अब तो लघुकथाओं के हर तरह के पाठकों की ज़रूरत है. मैं भविष्य के प्रति अवश्य ही आशान्वित हूं. जिस तरह से मैंने अकादमियों की सरगर्मियों को देखा है और जिस तरह से युवा वर्ग इससे जुड़ रहा है, वह बेहद ख़ास है. दीपक मशाल और सुधीर द्विवेदी की लघुकथाएं देखने में आ रही हैं. इससे आशा बनती है इसमें गंभीर रचनाकर्मी इससे जुड़ेंगे और इस विधा को एक नये मुकाम पर ले जायेंगे.

**लघुकथा क्षेत्र में आने वाले नये लेखकों को आप क्या संदेश देना चाहेंगे?**

नये लेखकों को जानना होगा कि किसी विधा का कोई शॉर्ट कट नहीं होता है. लघुकथा देखने में जितनी सरल है लिखने में उतनी ही कठिन है. नये लेखकों के लिए एक ही संदेश है कि अपनी संवेदना, अपनी जानकारी, अपने अनुभव, अपना अध्ययन तीनों-चारों चीज़ों को मिलाकर अपना रचनात्मक व्यक्तित्व बनायें. लिखने की तैयारी करें उसके बाद आप रचना में खो जायें. रचना को एक बार

**(शेष भाग पेज ४८ पर देखें...)**

# लंगड़े घोड़ों की रेस

✍ अक्षय जैन

*('वातायन' स्तंभ के अंतर्गत हम ऐसे लेख या टिप्पणियां प्रकाशित करते हैं जिनसे हमें सोचने की एक नयी दिशा मिले, सामने कोई नयी खिड़की खुलती दिखायी दे. यह लेख मासिक 'समाज प्रवाह' में छपा था.)*

कामरेड से बड़ा कामरेड का ओवरकोट हुआ करता था. तिरछा हैट पहने, सिगार पीते हुए, धुंध और कोहरे से लड़ता हुआ जब वह सड़क पर निकलता था तो लगता कि रात ख़त्म होते ही पूरी दुनिया में सर्वहारा का राज हो जायेगा. अगर हिंदुस्तान की नौजवान पीढ़ी को सर्वहारा का अर्थ नहीं मालूम है तो इसमें मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीएम) के महासचिव सीताराम येचुरी का क्या कसूर? उनकी डिक्शनरी से भी सर्वहारा शब्द ग़ायब हो गया है. सिर्फ सर्वहारा ही नहीं, साम्राज्यवाद और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद जैसे रेडिकल शब्द भी पलायन कर गये हैं.

कम्युनिस्ट आंदोलन का पतन आज अपने आख़िरी मुकाम पर है. तरक्की पसंद शायरी में सन्नाटा है. जिन प्रगतिशील बुद्धिजीवियों ने तीसरी दुनिया के मुक्ति संग्रामों पर बहस करने में अपनी ज़िंदगी खपा दी, आज एकांतवास का अलौकिक आनंद उठा रहे हैं. इप्टा के लोग फ़िल्मों में नाचने-गाने में मशरूफ़ हो गये. नुक्कड़ नाटक देखने वाले अदृश्य हो गये. सबसे ज़्यादा हृदयविदारक मंजर का सामना उन लेखकों को करना पड़ा, जिन्होंने कांग्रेसी सरकारों से पुरस्कार लिये और बाद में लौटाने पड़े. इसे अनहोनी कहें, दुनिया का आठवां आश्चर्य कहें, कि रैलियों, जुलूसों और आंदोलनों में मुर्दाबाद का नारा तो सुनाई देता है, लेकिन 'दुनिया के मज़दूरों एक हो', का नारा कोई नहीं लगाता!

लगता तो ऐसा ही है कि सीताराम येचुरी में सुरखाब के पर लगे हैं. उनका हाल ही में एक बयान आया है जिसमें उन्होंने सोनिया गांधी की जमकर तारीफ़ की है. क्यों, मुझे नहीं मालूम और नहीं की होती तो मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का क्या नुकसान हो जाता, यह बचे-खुचे तथाकथित वामपंथी विचारकों के लिए शोध का विषय हो सकता है. सीपीएम के सर्वोच्च पद पर आसीन महासचिव सीताराम येचुरी का कहना है कि सोनिया गांधी न सिर्फ़ कांग्रेसियों को एकजुट रखने में सीमेंट का काम करती हैं बल्कि धर्मनिरपेक्ष पार्टियों के गठबंधन को भी एकजुट रखने में सीमेंट का काम करती हैं.

यानी भारतीय राजनीति में कोई सेक्यूलर फ्रंट वजूद में है तो श्रेय की असली हकदार सोनिया गांधी हैं. यह एक आत्मघाती तर्क है. इसका सीधा अर्थ यही निकलता है कि जो काम सीताराम येचुरी की पार्टी नहीं कर सकी, वह काम सोनिया गांधी ने कर दिया है. सीताराम येचुरी के इस विलक्षण मार्क्सवादी ज्ञान से सड़क पर चलने वाला साधारण आदमी ज़रा भी परेशान नहीं है, लेकिन जवाहरलाल नेहरु युनिवर्सिटी के उन विद्यार्थियों को ज़रूर असमंजस में डाल दिया है जो 'ग़रीबी से आज़ादी' का नारा लगाते रहे हैं. अगर सांप्रदायिकता से लड़ने की कूवत सोनिया गांधी में ही है तो उनके लिए कांग्रेस में जाना ही बेहतर विकल्प है. कामरेड का ओवरकोट लंबा तो है, लेकिन उसकी जेबें फटी हुई हैं.

सांप्रदायिकता से लड़ने के नाम पर विपक्ष की राजनैतिक पार्टियों का धर्मनिरपेक्ष गठबंधन पराजित सेनापतियों का कामरेडी सर्कस बन गया है. इस सच्चाई से विपक्ष की एक भी राजनैतिक पार्टी रू-ब-रू नहीं होना चाहती कि भारतीय जनता पार्टी और काँग्रेस की आर्थिक नीतियां अमेरिका और विश्व बैंक द्वारा संचालित हैं. अगर सोनिया गांधी की लीडरशिप में सेक्यूलर फ्रंट बन भी गया तो वह ग़रीबी और बेरोज़गारी से मुक्त भारत के लिए आर्थिक मोर्चे पर लड़ेगा या सांप्रदायिकता से लड़ेगा?

क्या सीताराम येचुरी कांग्रेस को पूंजीवादी पार्टी नहीं मानते? क्या सीताराम येचुरी कांग्रेस के देशबेचू इतिहास को खारिज़ कर सकते हैं? जिस पार्टी पर देश के विभाजन का

दाग़ लगा हो, जिस पार्टी ने देश को आपातकाल की यातनाओं से गुज़ारा हो और जिस पार्टी पर १९८४ के नरसंहार के आरोप लगे हों, उस पार्टी के साथ कामरेड तथाकथित धर्मनिरपेक्ष गठबंधन में रहना चाहते हैं तो उन्हें अपनी चलाचली के लिए तैयार रहना चाहिए. जो ग़लती कामरेड हरकिशन सिंह सुरजीत ने की, उससे मुक्त हुए बिना संसदीय लोकतंत्र में विश्वास रखने वाली वामपंथी पार्टियों की वापसी संभव नहीं है. संयुक्त मोर्चे के नाम पर राज्यसभा में लच्छेदार भाषण तो दिया जा सकता है, दरिद्रनारायण की ख़िदमत नहीं की जा सकती.

जिस शख़्स ने मकाई की ठंडी रोटी और हरी मिर्च का स्वाद नहीं चखा हो, कुंओं और बावड़ियों का पानी नहीं पिया हो, जिसने न तो प्रेमचंद को पढ़ा हो और न ही बेग़म अख़्तर की ठुमरी सुनी हो, वो शख़्स कांग्रेसियों को एक रख सकता है, देश को नहीं. सोनिया गांधी इटली में बड़ी हुई हैं और इंग्लैंड में पढ़ी हैं. देश की बागडोर संभालने की पात्रता उसी नेता में हो सकती है जो भारत की निर्धन नेता में हो सकती है जो भारत की निर्धन जनता की ज़रूरतों से वाकिफ़ हो और उन ज़रूरतों को पूरा करने की क़ाबलियत भी रखता हो. हिंदुस्तान के कामरेडों की हौसला अफ़जाई के लिए यह शेर — 'ग़ालिब ओ' मीर तो अपनी जगह रहे. हम तो वो मरदूद, कहीं के नहीं रहे!'

**- साभार 'समाज प्रवाह'**

## पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. **- संपादक**

**'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है. - संपादक**

**ई-मेल :** kathabimb@gmail.com

## ग़ज़ल

**✍ यूसुफ़ ख़ान 'साहिल'**

*ये ज़िंदगी जब सज़ा देती है,*
*दर्द की टीस भी मज़ा देती है.*

*दर्द जब हद से गुज़रने लगे तो,*
*ये आहें मरहम लगा देती हैं.*

*तन्हाई जब सितम ढ़ाने लगे तो,*
*ज़िंदगी मौत का पता देती है.*

*मैं देखता हूं जब महलों के ख़्वाब,*
*ये तक़दीर औकात बता देती है.*

*चल छोड़ दे इस दुनियां को 'साहिल',*
*वो अज़ल भी तुझे सदा देती है.*

वार्ड नं. २६,
नोहर-३३५५२३, हनुमानगढ़
(राज.). मो. : ९९५०६५०१८६

## सागर-सीपी का शेष भाग...

लिखकर उसको रख छोड़ें ... कुछ दिनों बाद उसे फिर से देखें... अज्ञेय, प्रसाद, प्रेमचंद ने अपनी रचना को बार-बार संवारा है. लियो तोलस्तोय ने 'वार एंड पीस' सुनने में आया है कि पच्चीस बार लिखा. हम एक बार रचना लिखकर उसे अंतिम नहीं मान सकते. उसकी चर्चा से पीछे मत हटें. आलोचना को बर्दाश्त करें. पुनः पुनः लिखें, उसकी भाषा की, शिल्प की वाक्य विन्यास की बारीकियों पर जायें, और समय-समय पर उसे देखें. इसी तरह से आप आगे बढ़ सकते हैं.

१८८२, सेक्टर-१३,
करनाल-१३२००१
मो-९४१६१५२१००

**डॉ. राधेश्याम भारतीय**
नसीब विहार कॉलोनी,
घरौंडा, करनाल १३२११४
मो-९३१५३८२२३६

# रुक्मिणी देवी अरुण्डेल : एक अदभुत रम्य व्यक्तित्व

✍ डॉ. राजम पिल्लै

रुक्मिणी देवी अरुण्डेल — एक थियोसॉफ़िस्ट, नृत्य-विशारद और पशु-पक्षी संरक्षक ! दर्शन, कला, उदात्त जीवन शैली की अनूठी प्रतिमान! एक अद्‌भुत रम्य व्यक्तित्व!

रुक्मिणी देवी को परंपरागत सहज संपन्न ज्ञान का उत्तराधिकार मिला और उसी ने उन्हें उस युग में अभिजनों-सुशिक्षितों के बीच लोकप्रिय 'थियोसॉफ़ी दर्शन' की ओर आकर्षित किया. थियोसॉफ़ी दर्शन तब तक एक ऐसा आध्यात्मिक अभियान बन चुका था जिसने प्राचीन प्राच्य दर्शन, विशेष रूप से भारतीय वैदिक-औपनिषदिक सिद्धांतों की ओर पश्चिमी विचारकों को उन्मुख करने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई और योरप, अमेरिका, श्रीलंका, भारत आदि देशों में अनेक विद्वानों, मनीषियों ने बढ़-चढ़कर उस दर्शन को स्वीकार किया और उसका व्यापक, सघन प्रचार भी किया. रुक्मिणी देवी को प्राच्य और पाश्चात्य के मणिकांचन योग को साधने की प्रक्रिया में संलग्न विदेशी भारतीय तेजस्वी व्यक्तियों का साथ, सान्निध्य और सहयोग मिला और मिली एक उदार, प्रगतिशील, वैश्विक दृष्टि! भारतीय समाज-व्यवस्था में उच्चतम सोपान पर स्थित वर्ण और वर्ग में जन्म लेने के बावजूद उनमें अहंकार नहीं वरन गरिमायुक्त विनम्रता थी और जीव-मात्र के प्रति करुणा थी. आधुनिक भारत के सांस्कृतिक इतिहास में रुक्मिणी देवी का प्रमुखतम योगदान यह था कि उन्होंने परिस्थितिवश धूल की चड़ में लथपथ होकर सामाजिक वितृष्णा का केंद्र बन चुकी नृत्य कला को सकारात्मक सांस्कृतिक मूल्यों की सदानीरा सरिता में धोकर, निर्मल-स्वच्छ परिधान पहनाकर रंगमंच पर प्रस्तुत किया. उन्होंने उसे केवल व्यक्तिगत रुचि का माध्यम न रहने देकर राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मूल्य बोध को परिष्कृत करने के अभियान के तौर पर संचालित किया.

रुक्मिणी देवी का यह एक अभियान ही उन्हें एक अद्‌भुत-रम्य व्यक्ति के रूप में प्रस्थापित करने के लिए पर्याप्त था लेकिन वे केवल सांस्कृतिक अंग को पुर्नस्वास्थ्य प्रदान करने के कार्य तक ही नहीं रुकीं वरन उन्होंने सभ्यता के आदिम काल से मानव के संगी-साथी रहे पशु-पक्षियों के संरक्षण, संवर्धन के कार्य को भी मिशनरी उत्साह और कर्मठता से किया और उस क्षेत्र में भी विश्व की सराहना पायी.

रुक्मिणी देवी अरुण्डेल आजीवन एक ऐसी भव्य प्रतिमा की तरह रहीं जिसे गढ़ने के लिए चंदन, कस्तूरी और हाथी दांत का उपयोग किया गया, जिसका रूप, सौंदर्य, तेज़ देखने वाले के मन में श्रद्धा और सम्मान उत्पन्न करता रहा है; जिसकी प्रशंसा और सराहना में तालियां बजाने के लिए दोनों हाथ उठते तो रहे लेकिन फिर नमन में जुड़ गये!

**व्यक्तित्व-विकास के सोपान :**

रुक्मिणी देवी का जन्म २९ फरवरी सन १९०४ को मदुरै, मद्रास प्रेसिडेंसी में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ. पिता नीलकंठ शास्त्री पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट में इंज़ीनियर थे और संस्कृत भाषा तथा शास्त्रों के विद्वान ज्ञाता थे और माता शेषम्मा संगीत प्रेमी थीं. पिता का सन १९०१ में डॉ. एनी बेसेंट द्वारा अडयार, मद्रास में संचालित थियोसॉफ़िकल सोसायटी से संपर्क बना और वे उस दर्शन से बहुत प्रभावित हुए इसलिए रिटायर होने के बाद उन्होंने अडयार में ही मकान बनाकर स्थायी रूप से रहना शुरू किया.

**रुक्मिणी देवी पर थियोसॉफ़ी-आंदोलन का प्रभाव :**

पिता के ही मार्गदर्शन में रुक्मिणी का परिचय थियोसॉफ़िकल सोसाइटी के दर्शन, कार्यक्रम, वैश्विक स्वरूप और अभियान से हुआ और साथ ही कला, संस्कृति, रंगमंच, संगीत और नृत्य के बारे में एक अभिनव दृष्टिकोण से भी वे परिचित और प्रभावित हुईं.

**डॉ. जॉर्ज अरुण्डेल से विवाह :**

रुक्मिणी देवी के भावी बहुआयामी व्यक्तित्व को गढ़ने में डॉ. एनी बेसेंट के सहयोगी एक प्रमुख थियोसॉफ़िस्ट ब्रिटिश विद्वान डॉ. जॉर्ज अरुण्डेल का अतुलनीय योगदान रहा. डॉ. अरुण्डेल एनी बेसेंट द्वारा स्थापित सेंट्रल हिंदू कॉलेज़ वाराणसी के प्रिंसिपल भी रहे.

डॉ. राजम पिल्लै

डॉ. अरुण्डेल से विवाह करने के रुक्मिणी देवी के दृढ़ निश्चय ने उन लोगों को भी परेशान कर दिया जो विचारों से विश्व बंधुत्व के हिमायती थे और जन्म-जन्मांतरों के कर्मफलों पर विश्वास भी करते थे. डॉ. अरुण्डेल के प्रोत्साहन और आजीवन स्नेह-सहयोग ने रुक्मिणी देवी के संपूर्ण व्यक्तित्व को अपनी समग्रता में विकसित होने का अवसर प्रदान किया.

रुक्मिणी देवी ने विश्व के अनेक देशों का भ्रमण किया, विख्यात बाल शिक्षाविद् मारिया मोंटेसरी से, अनेक थियोसॉफ़िस्टों से और सन १९२८ में विख्यात रूसी नृत्यविशारद अन्ना पावलोवा से निकट संबंध बनाया और उनसे एक नयी सांस्कृतिक दृष्टि प्राप्त की. रुक्मिणी ने बैले नृत्य सीखा लेकिन फिर अन्ना पावलोवा के निर्देश पर ही अपना ध्यान भारतीय शास्त्रीय नृत्यों पर केंद्रित किया और यहीं वह ऐतिहासिक मोड़ आया जिसने रुक्मिणी देवी को अपना जीवन-मिशन प्रदान किया. उनका ध्यान 'देवदासी' प्रथा और उसके द्वारा पोषित 'सदिर' नृत्य पर गया.

**देवदासी प्रथा – श्वेत-श्याम पक्ष :**

भारत के पश्चिमी, दक्षिणी और दक्षिण-पूर्वी भागों में बालिकाओं-कुंवारी किशोरियों को देवालय के लिए देवता/ईश्वर की दास-भाव से सेवा के लिए अर्पित करने की परंपरा अभी-अभी बीसवीं सदी के पूर्वार्ध तक भी प्रचलित थी. उन्हें 'देवदासी' कहा जाता था यद्यपि अन्य अनेक अभिधानों से भी वे पहचानी जाती थीं. इस प्रकार से अर्पित कन्याओं की उम्र ८-१६ के बीच होती थी. इनका देवता/ईश्वर से लगभग सामान्य लड़कियों की तरह विवाह करवाया जाता था, गले में मंगलसूत्र माथे पर कुंकुम-बिंदी, जूड़े में मूल-सौभाग्यवती स्त्री के सभी आवश्यक बाहरी चिन्हों से ये विभूषित होती थीं और चूंकि अन्य स्त्रियों से अपशकुनी विधवा होने की संभावना होती थी, उनकी नहीं इसलिए इन स्त्रियों को मंगलामुखी भी कहा जाता था और शुभकार्यों में यहां तक कि राजा-महाराजाओं के स्वागत समारोहों में पूर्ण कलश लेकर स्वागत करने के लिए आगे रखा जाता था! यानी कुछ महानुभावों की इस धारणा और मान्यता को समुचित ही मानने को मन करता है कि देवदासियों का समाज में बड़ा सम्मान था, उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था! इन्हीं देवदासियों में से रूप-गुण-कला-कौशल से संपन्न स्त्रियों ने भारतीय रंगमंचीय कला-नृत्य, संगीत, नाट्य को समृद्ध और जीवन-संपन्न बनाये रखा था. भारतीय मंदिर-शिल्प की कालजयी कृतियों में जो नर्तकी, वादक, अभिनेत्री सुंदरियां आज भी कला रसिकों का मन मोहती हैं वे संभवत: उन्हीं कलाकार देवदासियों की अनुकृतियां हैं.

दक्षिण भारत के विशाल भव्य गोपुरम् — शिखर युक्त मंदिर आज भी सदियों पूर्व के उस इतिहास के साक्षी हैं जब साम्राज्य-स्थापक राजाओं ने अपनी-अपनी विशिष्ट धर्मास्था के अनुसार शैव-वैष्णव मंदिर बनाये, विपुल धनराशि का अजस्र स्रोत पूजा-अर्चना, आराधना के लिए प्रवाहित रखा और देव सेवा के एक अनिवार्य अंग के तौर पर देवदासियों की नियुक्तियां कीं, नृत्य-संगीत की अमूल्य परंपरा को प्रस्थापित किया. कई मंदिरों में तो हज़ारों की संख्या में नृत्यांगनाएं, उनकी संगत करने वाले वाद्यवृंद हुआ करते थे. इन राज्याश्रित कलाकारों को सामान्य जनों की तरह खेती-बाड़ी, धंधा-व्यवसाय नहीं करना पड़ता था, स्त्रियों को अन्य सामान्य स्त्रियों की तरह घर-परिवार में खटना नहीं पड़ता था. पर क्या सचमुच देवदासियां आजीवन सम्मान और प्रतिष्ठा की पात्र बनी रहती थीं?

**देवदासियों की दुरावस्था – स्वर्णिम मुलम्मों से ढंकी मिट्टी की मूरत :**

कटु वास्तविकता यह है कि अपने छोटे-से दायरे के

अलावा बाहरी, समाज में देवदासी तमिल भाषा में जिसे तेवडिया देव (ईश्वर) — अडिया (दासी) कहा जाता था वह शब्द आम जनों के बीच लगभग 'वेश्या' के रूप में प्रयुक्त होता था और 'तेवडिया मकन' (वेश्या-पुत्र) एक गाली थी.

देवता की आराधना-सेवा आदि स्वर्णिम मुलम्मों के बावजूद सच तो यही था कि ये देवदासियां किसी राजा, सामंत, ज़मींदार आदि की संरक्षिताएं होती थीं, उनकी संतानों को जन्म देती थीं; कन्या हुई तो प्रसन्न होती थीं कि उनकी व्यवसाय-परंपरा की उत्तराधिकारी आ गयी. लेकिन उनके 'संरक्षकों' के वंशवृक्ष में इन संततियों का उल्लेख नहीं होता था. कई बार ऐसा भी होता था कि इन संरक्षिताओं की जब सौंदर्यश्री ढलने लगती थी, कला-कौशल मंद पड़ने लगता था तो उन्हें क्रमश: नये संरक्षक ढूंढ़ने पड़ते थे. अपनी नृत्यकला को शास्त्रीय ऊंचाइयों से नीचे उतारते-उतारते श्रृंगार-रस से सराबोर कर काम-कला का पोषण करना पड़ता था.

दक्षिण भारत में देवदासियां जो नृत्य-रूप प्रस्तुत करती थीं उसका नाम था — 'सदिर'. जाहिर है, भारतीय जाति-व्यवस्था की परंपरा के अनुसार 'देवदासी' समुदाय लगभग एक जाति ही माना जाने लगा था और उनके विवाह आदि संबंध उन्हीं की जाति में होते थे और सामान्य व्यवसाय के सभी द्वार उनके पुरुषों के लिए बंद थे और स्त्रियां तो सामान्य गृहस्थों के आंगन ड्योढ़ी तक में पांव नहीं रख सकती थीं. विपन्नता की लगभग अंतिम सीढ़ी पर जब देवदासियां और उनका परिवार खड़ा था तभी उन पर एक बहुत बड़ा कहर टूट पड़ा और वह था भारत का लगभग अठारहवीं के उत्तरार्द्ध से प्रारंभ हुआ 'नवजागरण काल', 'पुनरुत्थान काल', 'पुनरुद्धार काल!' इस काल में भारतीय महानुभावों के अभियानों के फलस्वरूप तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने उत्तरी भारत के 'नाच-मुजरे' और दक्षिण के मंदिरों में किये जाते नृत्यों को अवैध घोषित कर क़ानूनी तौर पर उन पर पाबंदी लगा दीं. यही वह काल-बिंदु था जब रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ने भारतीय नृत्य कला के परिशोधन का महती उत्तरदायित्व हाथ में लिया.

**'सदिर' से 'भरतनाट्यम' में कायांतरण की प्रक्रिया :**

नवजागरण काल में तीन प्रकार की प्रवृत्तियां जागरूक सामाजिक कार्यकर्ताओं में दिखायी पड़ती थीं. एक अर्थ में यह 'हिंदू नवजागरण काल' था, तो एक पक्ष तो संपूर्ण प्राचीन रीति-रिवाजों, कर्मकांडों को घातक और दकियानूसी मानकर खारिज़ कर देना चाहता था तो दूसरा पक्ष सनातन मूल्यों को नकारने के कतई पक्ष में नहीं था और तीसरा पक्ष ऐसा था जो 'सुधार' और 'पुनरुद्धार' का समर्थक था. थियोसॉफ़िकल सोसायटी की तेजस्वी नेता डॉ. एनी बेसेंट तथा उनके भारतीय तथा विदेशी सहयोगी सदस्यों के मन में भारत की प्राचीन संस्कृति के बारे में बड़ा सम्मान था; उसमें यदि किसी प्रकार की खोट या खामी आ गयी थी तो उसे सुधारकर, उसका पुनरुद्धार और पुनरुत्थान करने के वे प्रबल समर्थक थे.

रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ने तब न केवल देवदासियों और समाज की कथित निम्न श्रेणियों में प्रचलित 'सदिर' नृत्य को स्वयं सीखा बल्कि बड़े-बड़े नृत्य-विशारदों-नटटुवनारों के सान्निध्य में आस्थावान शिष्या की तरह ज्ञान ग्रहण किया. उनके इस साहसी क़दम से फिर से उच्च वर्णियों में खलबली मच गयी क्योंकि ब्राह्मण कुल की कन्याएं ऐसे अश्लील और निकृष्ट माने जाने कलारूपों में भाग ले ही नहीं सकती थीं. रुक्मिणी देवी ने प्रचलित नृत्य रूप को नयी शैली दी, नयी कथावस्तु दी और सनातन गरिमा से आवृत्त कर उसे 'भरतनाट्यम्' का अभिधान दिया.

रुक्मिणी देवी निष्णात कल्पना शील 'कोरियोग्राफ़र' भी बनती गयीं. और उन्होंने विशेष रूप से भरतनाट्यम के प्रशिक्षण के लिए विधिवत अकादमी की स्थापना की.

**'कलाक्षेत्र' की स्थापना :**

सन १९३६ में रुक्मिणी देवी और उनके पति जॉर्ज अरुण्डेल ने नृत्य तथा संगीत सिखाने के लिए अडयार में, थियोसॉफ़िकल सोसाइटी के परिसर में ही 'कलाक्षेत्र' की स्थापना की. जो प्राचीन भारतीय गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली के आदर्श को प्रतिबिंबित करती थी. आज इस एकेडमी को डीम्ड युनिवर्सिटी का दर्ज़ा प्राप्त है और वह एक नये स्थान तिरुवन्मियूर में १०० एकड़ ज़मीन पर स्थापित है और देश-विदेश के कला-जिज्ञासु यहां आते हैं.

**'भरतनाट्यम' को प्रदान की गयी नयी विषय-वस्तु :**

कतिपय ख़ामियों की वजह से पारंपरिक नृत्य शैली को ही मिटा देने की अपेक्षा उसे नयी दिशा, नया लक्ष्य देने का ऐतिहासिक कार्य रुक्मिणी देवी ने किया. अनेक विद्वानों, नृत्य-विशारदों से सलाह और निर्देश पाकर उन्होंने जो नृत्यनाटिकाएं प्रस्तुत करवायीं वे नृत्य-कला के इतिहास में

अग्रगण्य मानी जाती हैं. उनकी 'सीता स्वयंवरम्', 'श्री राम वनगत्यनम', 'पादुका पट्टाभिषेकम्', 'शबरी मोक्षम्', 'कुद्राल कुरंजसी, रामायण, 'कुमार संभवम्', 'गीतगोविंदम्' और उषा परिणयम्-नृत्य नाटिकाओं को बड़ी सफलताएं भी मिलीं और सराहनाएं भी.

रुक्मिणी देवी को ही यह श्रेय जाता है कि आज भरतनाट्यम नृत्यशैली विश्व-भर में शुद्ध शास्त्रीय नृत्य की प्रशंसनीय प्रतिमान मानी जाती है और सभी वर्गों और वर्णों की लड़कियां-युवतियां यहां तक कि किशोर और युवा भी इसमें प्रशिक्षण लेते हैं और विश्व में जहां-जहां भारतीय हैं वहां-वहां इस नृत्य के प्रशिक्षण और प्रदर्शन की व्यवस्था की जाती है.

**रुक्मिणी देवी अरुण्डेल – एक अद्भुत रम्य व्यक्तित्व :**

रुक्मिणी देवी को भारत और विदेश की अनेक संस्थाओं ने सम्मानित किया, अलंकरणों से विभूषित किया. देश की राज्यसभा में सम्माननीय सदस्य के रूप में १९५२ में मनोनीत की जानेवाली वे पहली महिला थीं. वे सन १९५६ में भी मनोनीत की गयीं. सन १९५६ में उन्हें 'पद्मभूषण' अलंकरण प्रदान किया गया. संगीत नाटक अकादमी ने १९५७ में और विश्वभारती युनिवर्सिटी ने १९७२ में देशिकोत्तम सम्मान प्रदान किया. 'प्राणि मित्र' सम्मान के साथ ही 'रॉयल सोसायटी फॉर द प्रिवेंशन ऑफ क्रूएलिटी ऑफ़ एनिमल्स', लंदन द्वारा क्वीन विक्टोरिया सिल्वर मेडल भी उन्हें प्रदान किया गया.

२४ फरवरी १९८६ को ८१ साल की उम्र में चेन्नै, तमिलनाडु में रुक्मिणी देवी अरुण्डेल की मृत्यु हुई. उनके अदभुत रम्य व्यक्तित्व ने विविध क्षेत्रों के, विविध देशों के कला-प्रेमियों, सत्य पथ के अन्वेषियों को मार्गदर्शन दिया, प्रभावित किया. भारत के सांस्कृतिक मानचित्र में भरतनाट्यम प्रस्तुत करती नृत्यांगना की छवि जब-जब दिखाई पड़ती है तब-तब भरतनाट्यम नृत्य को शास्त्रीय गरिमा प्रदान करने में अग्रगण्य भूमिका निभानेवाली रुक्मिणी देवी अरुण्डेल का स्मरण हो आता है!

*६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,*
*रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),*
*मुंबई-४०००२८.*
*मो.:९८२०२२९५६५.*
*ई-मेल :* pillai.rajam@gmail.com

## ग़ज़ल

*फ़ारुख़ हुसैन*

*ये कैसी अजब सी हो गयी दुनियां,*
*अपने परायों में ही खो गयी दुनियां.*

*सारे बंधन जहां नीलाम हुए,*
*क्या से क्या हो गयी दुनियां.*

*रोज़ होती थी जहां मोहब्बत की बातें,*
*नफ़रतों में क्या धुल गयी दुनियां.*

*ढूंढ़ने से अब जहां नहीं मिलती ग़ैरत,*
*क्यों इतनी बेग़ैरत हो गयी दुनिया.*

*हाथों से आइना सी छूट गयी,*
*अब क्या चकनाचूर हो गयी दुनियां.*

*चरागों से मयस्सर होता था कभी 'फ़ारूख',*
*क्यों अब उजालों में ही खो गयी दुनियां !!*

*अभिव्यक्ति,*
*पलिया कलां (खीरी)–२६२९०२*
*मो.-९४५५३६८५०२/९६४८११३७४२*

## श्रीमती मालती जोशी को पद्मश्री

**वरिष्ठ हिंदी साहित्यकार एवं 'कथाबिंब' की नियमित लेखिका और हितैषी को पद्मश्री से अलंकृत होने के लिए 'कथाबिंब' परिवार की ओर से अनेक शुभकामनाएं एवं बधाई !**

# फिलहाल : असहज जीवन की सहज कविताएं

✍ रामगोपाल रैकवार

**फिलहाल** (कविता संग्रह) **– अनुपम श्रीवास्तव 'निरुपम'**
**प्रकाशक -** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मूल्य - २००/-

वरिष्ठ और ख्यातिलब्ध साहित्यकार श्री अनुपम श्रीवास्तव 'निरुपम' की छठवीं कविता पुस्तक 'फिलहाल' काव्य जगत में एक ताज़गी भरा अहसास है. इस कविता संग्रह में नवगीत, नयी कविता और नयी ग़ज़ल विधा पर केंद्रित निरुपम जी की आत्मोन्मुखी ८३ रचनाएं सम्मिलित हैं. निरुपम जी साहित्यप्रेमी पाठकों के बीच अपनी सहज किंतु परिपक्व रचनाओं के लिए अपरिचित नहीं हैं. जीवन की अनिश्चितताओं को शब्द देती ये रचनाएं व्यक्तिगत कही जाने के बावजूद पाठकों को भी आंदोलित कर देती हैं. कवि का अनुभव व्यष्टिगत होने के साथ-साथ समष्टिगत भी होता है. कोई भी रचना तभी पूर्ण कही जा सकती है जब वह दूसरों को भी अपनी-सी लगती हो. तभी वह पठनीय और हृदयस्पर्शनीय होती है. निरुपम की रचनाएं इस कसौटी पर खरी उतरती हैं. इस संग्रह में सम्मिलित उनकी रचनाओं में आम आदमी ख़ासतौर पर मध्यम-उच्च मध्यम वर्ग की उस आयु पड़ाव की अनुभूतियों को केंद्रीय रूप में सहेजा गया है जहां ज़िंदगी की अभ्यस्त यात्रा ख़त्म होने की स्थिति में होती है. जीवन की अपरिचित संभावनाओं और अनिश्चितताओं का अनजाना भय एक बेचैनी पैदा करने लगता है. हमेशा की तरह उनके इन गीतों और ग़ज़लों में भी रोमांस और रोमांच नहीं बल्कि वैचारिक गांभीर्य है जो परिपक्व मानसिकता को संतुष्टि प्रदान करता है. वैचारिकता के साथ-साथ भावों की प्रगाढ़ता रचनाओं को बोझिल वक्तव्य होने से बचाती है. दुरूहता और दुर्बोधता से परे उनका रचनाकर्म कितना सहज है इसे उन्हें पढ़कर ही जाना जा सकता है. उन्हें सहज काव्य का कवि कहना ठीक ही है. व्यक्ति के बारे में स्वयं अपना और दूसरों का विश्लेषण कितना अलग होता है. इसे यह नवगीत इसी सहजता के साथ व्यक्त करता है —

*'वो मिला तो उसने कहा, कितने बदल गये हो तुम.*
*मैं रोज़ देखता था आइना, आईने ने भी कभी बताया नहीं.'*

अपनी सुविधाओं और हितों की चिंता में आम आदमी एक जबरन तटस्थता को धारण कर लेता है. 'समझदारी नहीं है' रचना की ये पंक्तियां पठनीय हैं —

*सांस्कृतिक दहशत है,*
*लेकर प्रगतिशील कुंजियां अर्थ की पड़ताल,*
*समझदारी नहीं है.*

हमारी ज़िंदगी स्वयं की अपेक्षा दूसरों के हितचिंतन में ही बीत जाती है. अपने लिए कुछ करने या सोचने का वक़्त ही नहीं मिलता, यह मलाल हर किसी को कचोटता है —

*औरों के तकादे याद रहे, अगर छूटे हैं तो, बस जातीय काम छूटे हैं.*

अपनी ज़िंदगी को न जी पाने की कसक इस गीत में भी झलकती है —

*जरा-सी ज़िंदगी बचा के रखी है,*
*कभी फ़ुर्सत मिलेगी तो जी लूंगा ज़िंदगी.*

आदमी का बौनापन अपनी हदों को दुनिया पर थोपकर उसे भी हदों में समेट लेना चाहता है -

*आदमी को दुनिया, कहां सबको रास आयी.*
*तंग इमारतों ने तय कर दी हर हद,*
*आज़ाद हरियाली के कतर डाले कद.*
*बरगद को भी बना डाला बोनसाई.*

जीवन पूर्णता की खोज का दूसरा नाम है. भरसक प्रयत्नों के बाद भी कोई-न-कोई अभाव रह ही जाता है. हंसते-हंसते भी आंख नम हो जाती है —

*किसी को बुलाना भूल गये,*
*कोई किसी कारण आया नहीं—*
*हर जश्न में रह गयी, कोई-न-कोई कमी.*
*ख़ुशियों की आंखों में रह गयी थोड़ी नमी.*

आज जीवन कितना औपचारिक और सतही हो गया है, इसे फ़ेसबुक और व्हाट्सअप के बढ़ते प्रभाव से आंका जा सकता है. ख़ुशी का अकेलापन ढोते आदमी से कवि कहता है —

*फ़ेसबुक की प्रतिक्रियाओं से*
*अगर आप ख़ुश नहीं हैं,*

*तो निकल पड़ो एक ऐसे आदमी की तलाश में,*
*जिसके पास तुम्हारी ख़ुशी में शामिल होने के लिए समय हो.*

निरुपम जी की ग़ज़लें भी नवगीत की तरह 'नयी ग़ज़ल' का प्रतिनिधित्व करती हैं. इनमें प्रिय-प्रेयसी के संवादों की मधुरता के स्थान पर जीवन की कड़वाहट है. कल्पना की अल्पना नहीं यथार्थ की असाध्य प्रमेय है. दुनिया में जीवनयापन कितना कठिन है इसे ग़ज़ल 'वापस सितमगर नहीं आया' में देख सकते हैं —

*मैं हर रोज ख़ुद से दूर होता चला गया,*
*रोटी कमाने निकला तो वापस घर नहीं आया.*

सच कहना आसान नहीं होता. सच कहते समय हमारी ज़ुबान गूंगी हो जाती है. सच को स्वीकारते समय भी हम मौन हो जाते हैं. शायर भी यही कहता है —

*ज़हां से ये ख़ामोशियां शुरू होती हैं,*
*वहां से ही, सच्चाइयां शुरू होती हैं.*

आस्था के नाम पर देश में इन दिनों बहुत कुछ घटा है. विचारहीन आस्था देश, धर्म और समाज सभी के लिए घातक है. 'आस्थाएं' ग़ज़ल हमें इस ख़तरे से आगाह करती है —

*आज नामों से जुड़ी हैं आस्थाएं,*
*प्रश्नचिन्हों-सी खड़ी हैं आस्थाएं.*
*आस्था के ये नये आयाम देखो,*
*देश छोटा है बड़ी हैं आस्थाएं.*

अपनी ज़िंदगी को अपनी तरह जीना हर किसी को मयस्सर नहीं होता. 'कम ही मिलता है' ग़ज़ल में शायर की ये शिकायत क़ाबिले ग़ौर है —

*अपने घर में ठहरने का मौक़ा कम ही मिलता है,*
*ख़ुद के साथ रहने का मौक़ा कम ही मिलता है.*

ज़िंदगी कैसी भी क्यों न हो उसे जीना ही पड़ता है. यह कहने का उनका शायराना अंदाज देखिए —

*ज़िंदगी जैसी भी हो ज़िंदगी में शामिल होना पड़ता है,*
*हर एक गम के बाद ख़ुशी में शामिल होना पड़ता है.*

*अनुपम श्रीवास्तव 'निरुपम', संप्रति जिला न्यायाधीश* जिला एवं सत्र न्यायालय राजगढ़ म. प्र., ने पद की सीमाओं के रहते हुए भी जिस बेबाक़ी और सहजता के साथ जीवन की समस्याओं और जटिलताओं को अभिव्यक्ति का स्वर दिया है वह ध्यान आकर्षित करता है. आलोचना उनका ध्येय नहीं है, पर वास्तविकता को कहने से भी नहीं चूकते. उनकी भाषा परिमार्जित होने के साथ-साथ सहज और सरल है. उनके प्रतीक हमारे सामान्य परिवेश से लिए गये हैं. परिचित शब्दावली को ही चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है. अपनी बात को सहजता से कहना सहज नहीं होता पर निरुपम जी इस कार्य को बड़ी सहजता के साथ करते दिखायी देते हैं. नवलेखकों के लिए वे एक आदर्श हैं.

**प्रहलादपुरम, तखा मजरा, झांसी रोड,**
**टीकमगढ़, म. प्र. - ४७२००१**
**मो. : ०८०८५१५३७७८**
**E-mail : raikwar.rg60@gmail.com**

लघुकथा

# औपचारिकता

**डॉ. नरेंद्र नाथ लाहा**

जीवन में कुछ क्षण ऐसे होते हैं जब मानव का व्यवहार समझ में नहीं आता है. वह क्या कर रहा है, क्यों कर रहा है, किसलिए कर रहा है, सब मानो सिर के ऊपर से निकल जाता है.

मेरे मित्र के पिताश्री का यकायक देहांत हो गया. यह दुखदाई हादसा इतना यकायक हो गया कि सब बेहद दुखी हो गये. मित्र भी बहुत दुखी था. संपूर्ण औरपचारिकताएं निभाई गयीं. मैं बराबर उसके साथ था. वास्तव में वह बहुत दुखी था. कह रहा था, ''सिर के ऊपर से जब बुज़ुर्ग का हाथ हट जाता है तब वास्तव में उसकी क़ीमत समझ में आती है.''

तीन दिन के बाद माहौल कुछ और ही था. मित्र अब भी दुखी दिख रहे थे, पर कारण कुछ और था. मुझसे कह रहे थे, ''औपचारिकताएं निभाते-निभाते परेशान हो गया हूं. जल्दी से तेरहवीं की रस्म पूर्ण हो तो मैं अपने धंधे को शुरू करूं, बहुत नुकसान हो रहा है.

***२७, ललितपुर कॉलोनी,***
***डॉ. पी. एन. लाहा मार्ग,***
***ग्वालियर (म. प्र.).***
***मो. : ९७५३६९८२४०***

# प्राप्ति-स्वीकार

**दख़ील** (उपन्यास) : **रूपसिंह चंदेल,** भावना प्रकाशन, १०९-ए, पटपड़गंज, दिल्ली-११००११. मू. ५०० रु.
**मदारीपुर जंक्शन** (उपन्यास) : **बालेंदु द्विवेदी,** वाणी प्रकाशन, ४६९५, २१-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. ४९५ रु.
**आरोहण** (उपन्यास) : **सुदर्शन सोनी,** इंद्रा पब्लिशिंग हॉउस, ई-५/२१, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-४६२००६. मू. २३५ रु.
**आस्था का द्वार** (उपन्यास) : **करुणाश्री,** अनुज्ञा बुक्स, १/१०२०६, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. ३५० रु.
**सुगंधा** (उपन्यास) : **रामबाबू नीरव,** पीयुष प्रकाशन, एलपी-३२एफ, टी वी टॉवर के पास, पीतमपुरा, नयी दिल्ली-११००३२. मू.२०० रु.
**सच कुछ और था...** (कहानी संग्रह) : **सुधा ओम ढींगरा,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २५० रु.
**चौपड़े की चुड़ैलें** (क. सं.) : **पंकज सुबीर,** शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स, बस स्टैंड, सीहोर-४६६००१. मू. २५० रु.
**हम सब गुनहगार हैं** (क. सं.) : **प्रतापसिंह सोढ़ी,** रिसर्च लिंक प्रकाशन, कनाड़िया रोड, इंदौर-४५२०१६. मू. १२० रु.
**विडंबना** (क. सं.) : **श्रीमती प्रमोद पारवाला,** अंजली प्रकाशन, २६२,कहरवान, बिहारीपुर, बरेली-२४३००३. मू. १०० रु.
**बड़े आदमी के बारे में** (क. सं.) : **डॉ. परशुराम विरही,** नई ग़ज़ल प्रकाशन, सदर बाज़ार, शिवपुरी (म. प्र.). मू. १८० रु.
**और मशाल जलती रही** (क. सं.) : **करुणाश्री,** साहित्यागार, धामाणी मार्केट की गल्ली, चौड़ा रास्ता, जयपुर. मू. ३५० रु.
**हंसी की चीखें** (लघुकथा संग्रह) : **संतोष सुपेकर,** अक्षरविन्यास, एफ ६/३, ऋषिनगर, उज्जैन-४५६००१. मू. २३० रु.
**अंदाज़ नया** (ल. सं.) : **अशोक गुजराती,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २४० रु.
**मां की याद एवं अन्य लघुकथाएं** (ल. सं.) : **ज्ञानदेव मुकेश,** शिल्पायन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, १०२९५, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. २२५ रु.
**कितने भस्मासुर** (ल. सं.) : **योगेंद्र शर्मा,** नमन प्रकाशन, ४२३१/१, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २०० रु.
**सच का दर्पण** (ल. सं.) : **सेवा सदन प्रसाद,** श्री सत्यम प्रकाशन, खादी भंडार के सामने, गांधी चौक, झुंझुनूं-३३३००१. मू. १९५ रु.
**नोट बंदी** (ल. सं.) : **सुरेश सौरभ,** नमन प्रकाशन, चिन्टल्स हॉउस, स्टेशन रोड, लखनऊ. मू. ६० रु.
**बड़ा भिखारी** (ल. सं.) : **रमेश मनोहरा,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २२० रु.
**क्या क्यूं कैसे @लघुकथा** (ल. सं.) : **अशोक भाटिया,** साहित्य उपक्रम, १/१०२०६, वेस्ट गोरख पार्क, शाहदरा, दिल्ली-११००३२. मू. ६० रु.
**परिंदे पूछते हैं** (ल. विमर्श) : **अशोक भाटिया,** लघुकथा शोध केंद्र, १२/७, इंद्रपुरी, बी-सेक्टर, भोपाल. मू. १०० रु.
**मैं शिव हूं** (गद्य) : **डॉ. सतीश शुक्ल,** साहित्य केंद्र प्रकाशन, आर २/२९, रमेश पार्क, गुरुद्वारा रोड, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-११००९२. मू. २२० रु०
**माटी के रंग** (निबंध) : **डॉ. सूर्यदीन यादव,** राहुल प्रकाशन, सी-७४, साई धाम टेनामेंट, वस्त्राल रोड, अहमदाबाद-३४२४१८.मू. २०० रु.
**एक शब्द यात्रा-बहुरंगी** (गद्य) : **मधु प्रसाद,** राहुल प्रकाशन, सी-७४, साई धाम टेनामेंट, वस्त्राल रोड, अहमदाबाद-३४२४१८. मू. १५० रु.
**बहुत दिनों के बाद** (क. सं.) : **सुषमा सिन्हा,** प्रकाशन संस्थान, ४२६८-बी/३, अंसारी रोड, नयी दिल्ली-११०००२. मू. २५० रु.
**फिलहाल** (काव्य सं.) : **निरुपम,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २०० रु.
**लोकराग** (काव्य सं.) : **प्रभात सरसिज,** प्यारा केरकट्टा फॉउंडेशन, बरियातु, चेशायर होम रोड, रांची-८३४००९. मू. १५० रु.
**कविता कहो ज़िंदगी** (क. संकलन) : **सं. डॉ. गीता डोगरा,** साहिल प्रकाशन, पंचवटी, एकता एनक्लेव, साधु आश्रम, होशियारपुर-१४६०२१. मू. २५० रु.
**फिलहाल** (काव्य सं.) : **निरुपम,** अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली, नयी दिल्ली-११००३०. मू. २०० रु.
**काव्य मंजरी** (काव्य) : **सं. सुरेश सौरभ,** नमन प्रकाशन, चिन्टल्स हॉउस, स्टेशन रोड, लखनऊ. मू. ६० रु.
**ग़ज़ल की उड़ान** (ग़ज़ल संग्रह) : **डॉ. महेश प्रसाद सिंघल,** अरुणा प्रकाशन, गुरद्वारा मार्ग, खरगोन (म. प्र.). मू. २५० रु.
**इस ज़िंदगी की जय** (ग़. सं.) : **चंद्रसेन विराट,** अमन प्रकाशन, १०४-ए/८०सी, रामबाग, कानपुर-२०८०१२. मू. १९५ रु.
**दोहा द्वीप** (दोहा संकलन) : **सं. सतीश गुप्ता,** शब्दोत्सव, के-२२१, यशोदा नगर, कानपुर-२०८०११. मू. २५० रु.

# महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित पुरस्कार समारोह (१७ जनवरी २०१८)

श्री हंसराज अहिर, मान्यनीय राज्यमंत्री, गृहमंत्रालय भारत सरकार से जीवन गौरव सम्मान पुरस्कार प्राप्त करते हुए डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद' साथ में हैं : श्री विनोद तावडे (मंत्री, सांस्कृतिक कार्य, महाराष्ट्र सरकार) एवं अकादमी सचिव डॉ.नंदलाल पाठक तथा 'कथाबिंब' की संपादिका व पत्नी श्रीमती मंजुश्री.

**सम्मान चिन्ह के साथ**
**डॉ.माधव सक्सेना 'अरविंद'**

**प्रशस्ति-पत्र के साथ प्रदत्त 'ज्ञानेश्वरी'**
**व 'एक दीप कवि प्रदीप' पुस्तकें**

# T.A. CORPORATION

8, Dewan Niketan, Chembur Naka, Chembur, Mumbai - 400 071.

Ph. : (off): + 91-22-25223613 / 67974515 / 6596 1234

Fax : + 91-22-25223631 • Email : tac@vsnl.com

• Website : www.chemicalsandinstruments.com

## ★ Offers ★

- H.P.L.C. GRADE CHEMICALS
- SCINTILLATION GRADE CHEMICALS
- GR GRADE CHEMICALS
- BIOCHEMICALS
- STANDARD SOLUTIONS
- HIGH PURITY CHEMICALS
- ELECTRONIC GRADE CHEMICALS
- LR GRADE CHEMICALS
- INDICATORS
- LABORATORY INSTRUMENTS

**Manufactured by :**

## PRABHAT CHEMICALS

C1B, 1909, G.I.D.C., Panoli, Dist. Bharuch, Gujarat,

Ph.: 02646-272332

email: response@prabhatchemicals.com

website : www.prabhatchemicals.com

**Stockist of:**

- Sigma, aldrich, Fluka, Alfa, (U.S.A.)
- Riedel (Switzerland)
- Merch (GDR)
- Lancaster (UK)
- Strem (UK)

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या :३५७६४/ ७९

संपर्क सूत्र : 'कथाबिंब'ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८


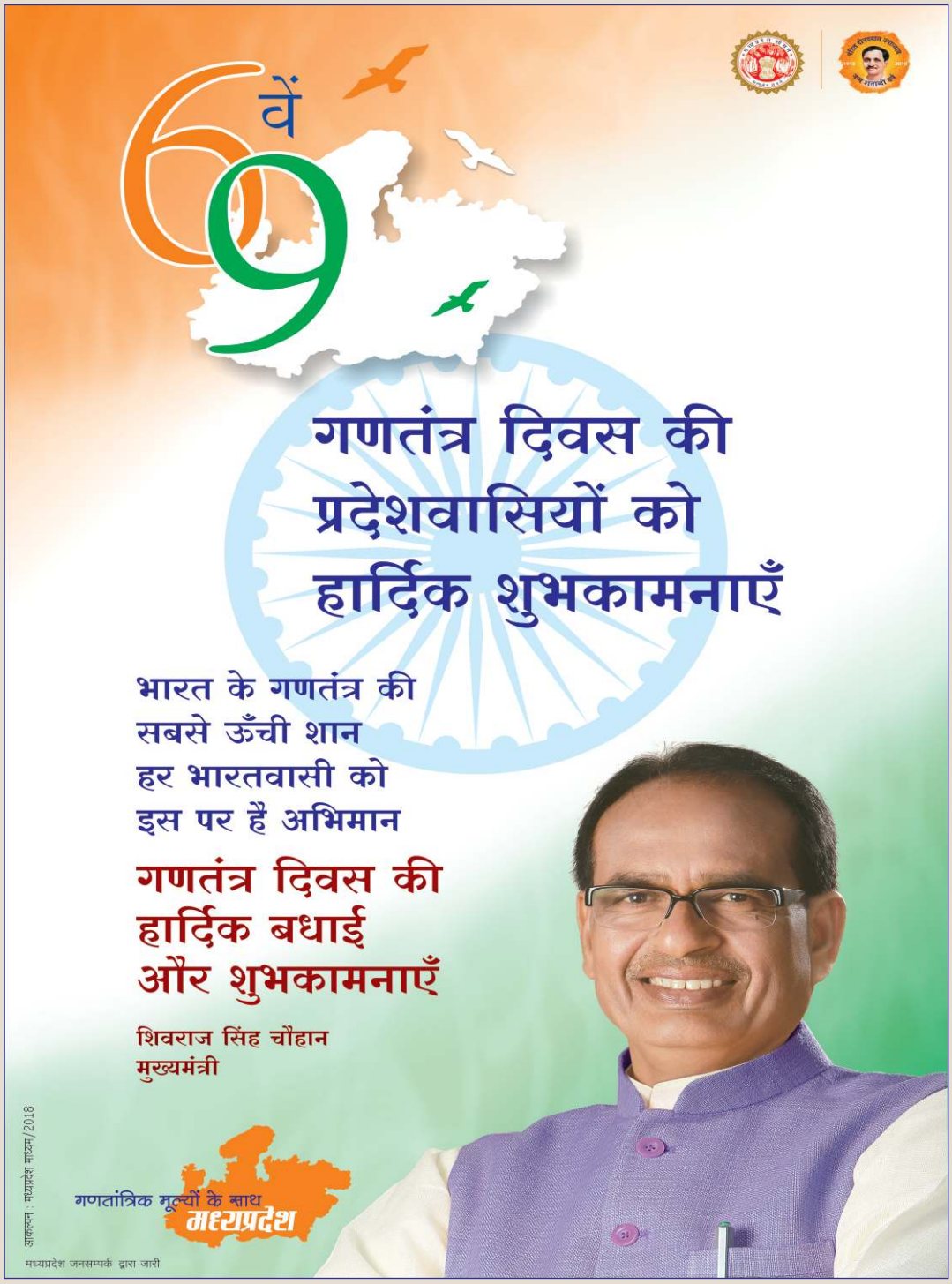



मंजुश्री द्वारा संपादित व युनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंडस्ट्रीयल इस्टेट, भायखला, मुंबई-४०० ०२७, में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई-४०० ०७१. फोन : २५५१५५४१